व्यासपूर्णिमा

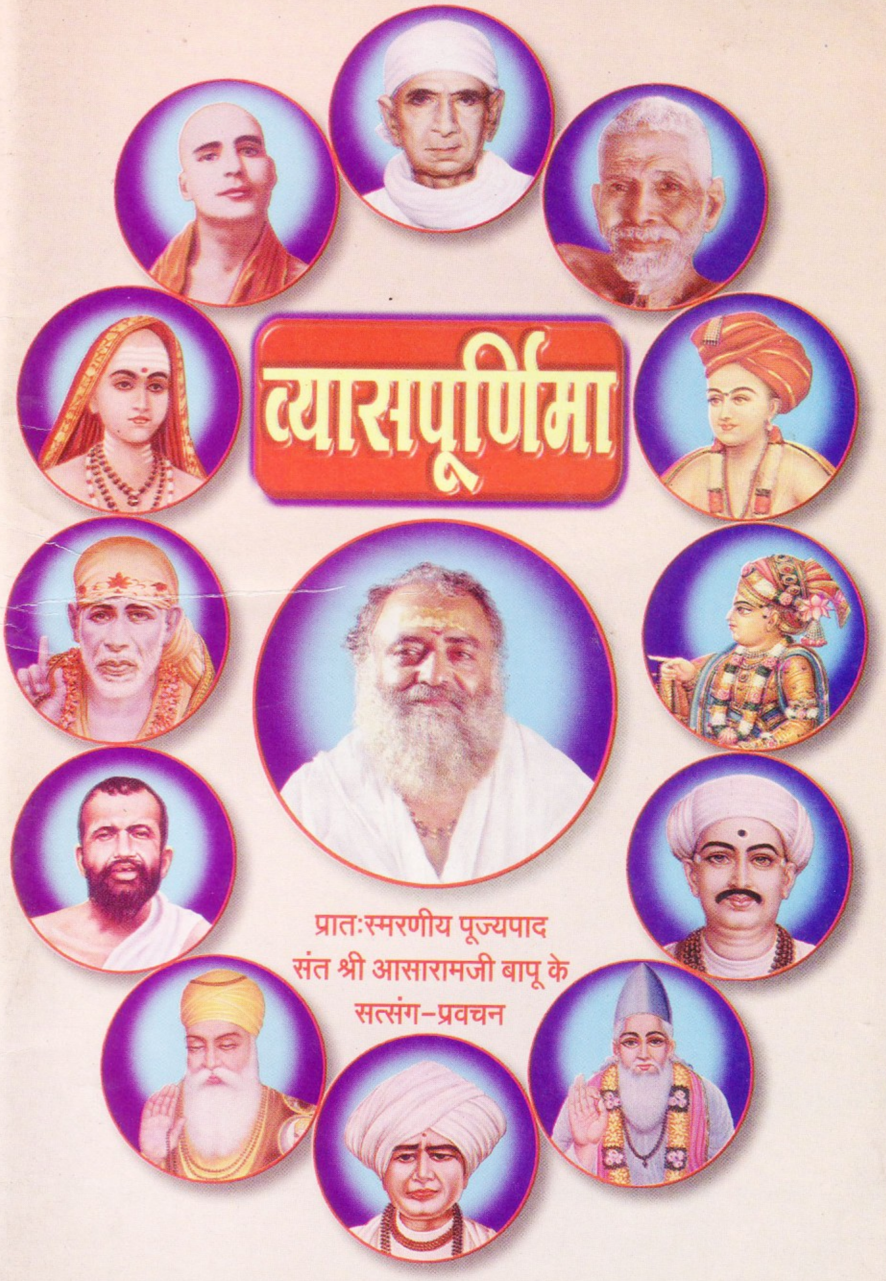

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

व्यास पूर्णिमा

इस पुस्तक में है-

साधना के लिए उत्साहित करने वाले और संसार की नश्वरता से बचाने के सचोट प्रसंग। भिन्न-भिन्न भक्तों, योगियों, साधकों की कथा द्वारा भक्ति, योग व साधना की पुष्टि और सब वृत्तियों से परे परमात्मा का साक्षात्कार.....विवेक, वैराग्य, भक्ति, उत्साह और परम सत्य का साक्षात्कार....

निवेदन

व्यास पूर्णिमा के पावन पर्व पर साधकों, भक्तों और मोक्षमार्ग के पथिकों के जीवन में प्रभु-प्राप्ति का उत्साह एवं साधन-भजन-नियम का संकेत मिले, ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि हो इस हेतु पूज्यपाद स्वामी जी ने प्रेरणा पीयूष परोसा है। 'हमी बोलतो वेद बोलते' - संत तुकाराम जी की यह उक्ति साकार करते हुए मानो वेदवाणी का अमृत बहाया है। इन आत्मारामी महापुरूष के व्यवहार में, निष्ठा में और वचनों में हम उस वेदवाणी का मूर्त स्वरूप पाते हैं।

ये अनुभवयुक्त वचन जिज्ञासु श्रोताओं को अवश्य उत्साहित करेंगे, पथ-प्रदर्शन करेंगे, जीवन की उलझी हुई तमाम गुत्थियों को सुलझाने में सहयोग देंगे।

प्यारे साधक गण ! बार-बार इस पावन प्रसाद का पठन और मनन करके अवश्य लाभान्वित हो, यही विनम्र प्रार्थना....

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

निवेदन ... 3

व्यास पूर्णिमा ... 3

राही रूक नहीं सकते ... 14

साध्य को पाये बिना......? ... 30

प्रपत्तियोग ... 39

ऐ राही ! बचके...... ... 46

आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति ... 50

कामना की निवृत्ति ... 51

निराकार आधार हमारे.............. ... 53

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

व्यास पूर्णिमा

अन्य देवी देवताओं की पूजा के बाद भी किसी की पूजा करना शेष रह जाता है लेकिन सच्चे ब्रह्मनिष्ठ सदगुरू की पूजा के बाद और किसी की पूजा करना शेष नहीं रहता। गुरू वे हैं जो शिष्य को सदा के लिए शिष्य न रखे, शिष्य को संसार में डूबने वाला न रखें, शिष्य को जन्मने और मरने वाले न रखें। शिष्य को जीव में से ब्रह्म बनाने का मौका खोजते हों वे गुरू हैं, वे परम गुरू हैं, वे सदगुरू हैं। सच्चे गुरू शिष्य को शिष्यत्व से हटाकर, जीवत्व से हटाकर, ब्रह्मत्व में

आराम और चैन दिलाने के लिए, ब्रह्मरस की परम तृप्ति और परमानन्द की प्राप्ति कराने की ताक में रहते हैं। ऐसे गुरू की आज्ञा को स्वीकार कर जो चल पड़े वह सच्चा शिष्य है।

दुनियाँ के सब धर्मग्रन्थ, संप्रदाय, मजहब रसातल में चले जायें फिर भी पृथ्वी पर एक सदगुरू और एक सत्शिष्य हैं तो धर्म फिर से प्रकट होगा, शास्त्र फिर से बन जाएंगे, क्योंकि सदगुरू शिष्य को अमृत-उपदेश दिये बिना नहीं रहेंगे। और वही अमृत-उपदेश शास्त्र बन जायेगा। जब तक पृथ्वी पर एक भी ब्रह्मवेत्ता सदगुरू हैं और उनको ठीक से स्वीकार करने वाला सत्शिष्य है तब तक धर्मग्रन्थों का प्रारंभ फिर से हो सकता है। मानव जाति को जब तक ज्ञान की पिपासा रहेगी तब तक ऐसे सदगुरूओं का आदर-पूजन बना रहेगा।

प्राचीन काल में उन महापुरूषों को इतना आदर मिलता था किः

गुरू गोविन्द दोनों खड़े किसको लागूं पाय।
बलिहारी गुरूदेव की गोविन्द दियो दिखाय।।

वे लोग अपने हृदय में गोविन्द से भी बढ़कर स्थान अपने गुरू को देते थे। गोविन्द ने जीव करके पैदा किया लेकिन गुरू ने जीव में से ब्रह्म करके सदा के लिए मुक्त कर दिया। माँ-बाप देह में जन्म देते हैं लेकिन गुरू उस देह में रहे हुए विदेही का साक्षात्कार कराके परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित कराते हैं, अपने आत्मा की जागृति कराते हैं।

न्यायाधीश न्याय की कुर्सी पर बैठकर, न्याय तो कर सकता है लेकिन न्यायालय की तौहीन नहीं कर सकता, उससे न्यायालय का अपमान नहीं किया जाता। उस ऋषिपद का, गुरूपद का उपयोग करके हम संसारी जाल से निकलकर परमात्म-प्राप्ति कर सकते हैं। ईश्वर अपना अपमान सह लेते हैं लेकिन गुरू का अपमान नहीं सहता ।

देवर्षि नारद ने वैकुण्ठ में प्रवेश किया। भगवान विष्णु और लक्ष्मी जी उनका खूब आदर करने लगे। आदिनारायण ने नारदजी का हाथ पकड़ा और आराम करने को कहा। एक तरफ भगवान विष्णु नारद जी की चम्पी कर रहे हैं और दूसरी तरफ लक्ष्मी जी पंखा हाँक रही हैं। नारद जी कहते हैं- "भगवान ! अब छोड़ो। यह लीला किस बात की है ? नाथ ! यह क्या राज समझाने की युक्ति है ? आप मेरी चम्पी कर रहे हैं और माता जी पंखा हाँक रही हैं ?"

"नारद ! तू गुरूओं के लोक से आया है। यमपुरी में पाप भोगे जाते हैं, वैकुण्ठ में पुण्यों का फल भोगा जाता है लेकिन मृत्युलोक में सदगुरू की प्राप्ति होती है और जीव सदा के लिए मुक्त हो जाता है। मालूम होता है, तू किसी गुरू की शरण ग्रहण करके आया है।"

नारदजी को अपनी भूल महसूस कराने के लिए भगवान ये सब चेष्टाएँ कर रहे थे।

नारद जी ने कहाः "प्रभु ! मैं भक्त हूँ लेकिन निगुरा हूँ। गुरू क्या देते हैं ? गुरू का माहात्म्य क्या होता है यह बताने की कृपा करो भगवान !"

"गुरू क्या देते हैं..... गुरु का माहात्म्य क्या होता है यह जानना हो तो गुरूओं के पास जाओ। यह वैकुण्ठ है, खबरदार....."

जैसे पुलिस अपराधियों को पकड़ती है, न्यायाधीश उन्हें नहीं पकड़ पाते, ऐसे ही वे गुरूलोग हमारे दिल से अपराधियों को, काम-क्रोध-लोभ-मोहादि विकारों को निकाल निकाल कर निर्विकार चैतन्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति में सहयोग देते हैं और शिष्य जब तक गुरूपद को प्राप्त नहीं होता है तब तक उस पर निगरानी रखते रखते जीव को ब्रह्मयात्रा कराते रहते हैं।

"नारद ! जा, तू किसी गुरू की शरण ले। बाद में इधर आ।"

देवर्षि नारद गुरू की खोज करने मृत्युलोक में आये। सोचा कि मुझे प्रभातकाल में जो सर्वप्रथम मिलेगा उसको मैं गुरू मानूँगा। प्रातःकाल में सरिता के तीर पर गये। देखा तो एक आदमी शायद स्नान करके आ रहा है। हाथ में जलती अगरबत्ती है। नारद जी ने मन ही मन उसको गुरू मान लिया। नजदीक पहुँचे तो पता चला कि वह माछीमार है, हिंसक है। (हालाँकि आदिनारायण ही वह रूप लेकर आये थे।) नारदजी ने अपना संकल्प बता दिया किः "हे मल्लाह ! मैंने तुमको गुरू मान लिया है।"

मल्लाह ने कहाः "गुरू का मतलब क्या होता है ? हम नहीं जानते गुरू क्या होता है ?"

"गु माने अन्धकार। रू माने प्रकाश। जो अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाकर ज्ञानरूपी प्रकाश कर दें उन्हें गुरू कहा जाता है। आप मेरे आन्तरिक जीवन के गुरू हैं।" नारदजी ने पैर पकड़ लिये।

"छोड़ो मुझे !" मल्लाह बोला।

"आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लो गुरूदेव!"

मल्लाह ने जान छुड़ाने के लिए कहाः "अच्छा, स्वीकार है, जा।"

नारदजी आये वैकुण्ठ में। भगवान ने कहाः

"नारद ! अब निगुरा तो नहीं है ?"

"नहीं भगवान ! मैं गुरू करके आया हूँ।"

"कैसे हैं तेरे गुरू ?"

"जरा धोखा खा गया मैं। वह कमबख्त मल्लाह मिल गया। अब क्या करें ? आपकी आज्ञा मानी। उसी को गुरू बना लिया।"

भगवान नाराज हो गयेः "तूने गुरू शब्द का अपमान किया है।"

न्यायाधीश न्यायालय में कुर्सी पर तो बैठ सकता है, न्यायालय का उपयोग कर सकता है लेकिन न्यायालय का अपमान तो न्यायाधीश भी नहीं कर सकता। सरकार भी न्यायालय का अपमान नहीं करती।

भगवान बोलेः "तूने गुरूपद का अपमान किया है। जा, तुझे चौरासी लाख जन्मों तक माता के गर्भों में नर्क भोगना पड़ेगा।"

नारद रोये, छटपटाये। भगवान ने कहाः "इसका इलाज यहाँ नहीं है। यह तो पुण्यों का फल भोगने की जगह है। नर्क पाप का फल भोगने की जगह है। कर्मों से छूटने की जगह तो वहीं है। तू जा उन गुरूओं के पास मृत्युलोक में।"

नारद आये। उस मल्लाह के पैर पकड़ेः "गुरूदेव ! उपाय बताओ। चौरासी के चक्कर से छूटने का उपाय बताओ।"

गुरूजी ने पूरी बात जान ली और कुछ संकेत दिये। नारद फिर वैकुण्ठ में पहुँचे। भगवान को कहाः "मैं चौरासी लाख योनियाँ तो भोग लूँगा लेकिन कृपा करके उसका नक्शा तो बना दो ! जरा दिखा तो दो नाथ ! कैसी होती है चौरासी ?

भगवान ने नक्शा बना दिया। नारद उसी नक्शे में लोटने-पोटने लगे।

"अरे ! यह क्या करते हो नारद ?"

"भगवान ! वह चौरासी भी आपकी बनाई हुई है और यह चौरासी भी आपकी ही बनायी हुई है। मैं इसी में चक्कर लगाकर अपनी चौरासी पूरी कर रहा हूँ।"

भगवान ने कहाः "महापुरूषों के नुस्खे भी लाजवाब होते हैं। यह युक्ति भी तुझे उन्हीं से मिली नारद ! महापुरूषों के नुस्खे लेकर जीव अपने अतृप्त हृदय में तृप्ति पाता है। अशान्त हृदय में परमात्म शान्ति पाता है। अज्ञान तिमिर से घेरे हुए हृदय में आत्मज्ञान का प्रकाश पाता है।"

जिन-जिन महापुरूषों के जीवन गुरूओं का प्रसाद आ गया है वे ऊँचे अनुभव को, ऊँची शान्ति को प्राप्त हुए हैं। हमारी क्या शक्ति है कि उन महापुरूषों का, गुरूओं का बयान करे ? वे तत्त्ववेत्ता पुरूष, वे ज्ञानवान पुरूष जिसके जीवन में निहार लेते हैं, ज्ञानी संत जिसके जीवन में जरा-सी मीठी नजर डाल देते हैं उसका जीवन मधुरता के रास्ते चल पड़ता है।

ऐसे परम पुरूषों की हम क्या महिमा गायें ? जिन्होंने जितना सुना, जितना जाना, जितना वह कह सके उतना कहा लेकिन उन ज्ञानवान पुरूषों की महिमा का पूरा गान कोई नहीं कर सका। लोग गाते थे, गा रहे हैं और गाते ही रहेंगे। श्रीकृष्ण और श्रीरामचन्द्रजी अपने गुरूओं के द्वार पर जाकर ब्रह्मविद्या का पान करते थे। व्यासपुत्र शुकदेवजी ने जनक से ज्ञान पाया। जनक ने अष्टावक्र से पाया।

एक सत्शिष्य ने गौड़देश से पैदल चलकर आत्मज्ञान की जिज्ञासा व्यक्त की, शुकदेवजी के चरणों में आत्मलाभ हुआ तब उनका नाम गौड़पादाचार्य। गौड़पादाचार्या से आत्मलाभ पाया गोविन्दपादाचार्या ने। वे भगवान गोविन्दपादाचार्य नर्मदा किनारे ओंकारेश्वर तीर्थ में एकान्त अरण्य आत्मलाभ प्राप्त करके उसी आत्मशान्ति में, उसी अलौकिक परब्रह्म परमात्मा की शान्ति में ध्यानमग्न थे।

कई संन्यासियों को पता चला कि भगवान गोविन्दपादाचार्य परब्रह्म परमात्मा को पाये हुए आत्म-साक्षात्कारी महापुरूष हैं। उन्हें अपने स्वरूप का बोध हो गया है। उन्होंने अपने दिल में दिलबर का आराम पाया है। नर्मदा किनारे तप करने वाले तपस्वी गोविन्दपादाचार्य के दर्शन

करने के लिए वहीं कुटिया बनाकर रहने लगे। रहते रहते बूढ़े हो गये लेकिन गोविन्दपादाचार्य की समाधि नहीं खुली। इतने में दक्षिण भारत के केरल प्रान्त से पैदल चलते हुए दो महीने से भी अधिक समय तक यात्रा करने के बाद शंकर नाम का बालक पहुँचा उन संन्यासियों के पास।

"मैंने नाम सुना है भगवान गोविन्दपादाचार्य का। वे पूज्यपाद आचार्य कहाँ रहते हैं ?"

संन्यासियों ने बताया किः "हम भी उनके दर्शन का इन्तजार करते-करते बूढ़े हो चले। उनकी समाधि खुले, उनकी अमृत बरसाने वाली निगाहें हम पर पड़ें, उनके ब्रह्मानुभव के वचन हमारे कानों में पड़े और कान पवित्र हों इसी इन्तजार में हम भी नर्मदा किनारे अपनी कुटियाएँ बनाकर बैठे हैं।"

संन्यासियों ने उस बालक को निहारा। वह बड़ा तेजस्वी लग रहा था। इस बाल संन्यासी का सम्यक् परिचय पाकर उनका विस्मय बढ़ गया। कितनी दूर केरल प्रदेश ! यह बच्चा वहाँ से अकेला ही आया है श्रीगुरू की आश में। जब उन्होंने देखा कि इस अल्प अवस्था में ही वह भाष्य समेत सभी शास्त्रों में पारंगत है और इसके फलस्वरूप उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया है तो उन सबका मन प्रसन्नता से भर गया। मुग्ध होते हुए पूछाः

"क्या नाम है बेटे ?"

"मेरा नाम शंकर है।"

बच्चे की ओजस्वी वाणी और तीव्र जिज्ञासा देखकर उन्होंने समाधिस्थ बैठे महायोगी गुरूवर्य श्री गोविन्दपादाचार्य के बारे में कुछ बातें कही। वह निर्दोष नन्हा बालक भगवान गोविन्दपादाचार्य के दर्शन के लिए तड़प उठा। संन्यासियों ने कहाः

"वह दूर जो गुफा दिखाई दे रही है उसमें वे समाधिस्थ हैं। अन्धेरी गुफा में दिखाई नहीं पड़ेगा इसलिए यह दीपक ले जा।"

दीया जलाकर उस बालक ने गुफा में प्रवेश किया। विस्मय से विमुग्ध होकर देखा तो एक अति दीर्घकाय, विशाल-भाल-प्रदेशवाले, शान्त मुद्रा, लम्बी जटा और कृश देहवाले फिर भी पूरी आध्यात्मिकता के तेज से आलोकित एक महापुरूष पद्मासन में समाधिस्थ बैठे थे। शरीर की त्वचा सूख चुकी थी फिर भी उनका शरीर ज्योतिर्मय था। भगवान का दर्शन करते ही शंकर का रोम-रोम पुलकित हो उठा। मन एक प्रकार से अनिर्वचनीय दिव्यानन्द से भर उठा। अबाध अश्रुजल से उनका वक्षः स्थल प्लावित हो गया। उसकी यात्रा का परिश्रम सार्थक हो गया। सारी थकान उतर गयी। करबद्ध होकर वे स्तुति करने लगेः

"हे प्रभो ! आप मुनियों में श्रेष्ठ हैं। आप शरणागतों को कृपाकर ब्रह्मज्ञान देने के लिए पतंजली के रूप में भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं। महादेव के डमरू की ध्वनि के समान आपकी भी महिमा अनंत एवं अपार है। व्याससुत शुकदेव के शिष्य गौड़पाद से ब्रह्मज्ञान का लाभ पाकर आप यशस्वी हुए हैं। मैं भी ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की कामना से आपके श्रीचरणों में आश्रय की भिक्षा माँगता हूँ। समाधि-भूमि से व्युत्थित होकर इस दीन शिष्य को ब्रह्मज्ञान प्रदान कर आप कृतार्थ करें।"

इस सुललित भगवान की ध्वनि से गुफा मुखरित हो उठी। तब अन्य संन्यासी भी गुफा में आ इकट्ठे हुए। शंकर तब तक स्तवगान में ही मग्न थे। विस्मय विमुग्ध चित्त से सबने देखा कि भगवान गोविन्दपाद की वह निश्चल निस्पन्द देह बार-बार कम्पित हो रही है। प्राणों का स्पन्दन दिखाई देने लगा। क्षणभर में ही उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर चक्षु उन्मीलित किये।

शंकर ने गोविन्दपादाचार्य भगवान को साष्टांग प्रणाम किया। दूसरे संन्यासी भी योगीश्वर के चरणों में प्रणत हुए। आनंदध्वनि से गुफा गुंजित हो उठी। तब प्रवीण संन्यासीगण योगीराज को समाधि से सम्पूर्ण रूप से व्यथित कराने के लिए यौगिक प्रकियाओं में नियुक्त हो गये। क्रम से योगीराज का मन जीवभूमि पर उतर आया। यथा समय आसन का परित्याग कर वे गुफा से बाहर निकले।

योगीराज की सहस्रों वर्षों की समाधि एक बालक संन्यासी के आने से छूट गई है, यह संवाद द्रुतगति से चतुर्दिक फैल गया। सुदूर स्थानों से यतिवर की दर्शनाकांक्षा से अगणित नर-नारियों ने आकर ओंकारनाथ को एक तीर्थक्षेत्र में परिणत कर दिया। शंकर का परिचय प्राप्त कर गोविन्दापादाचार्य ने जान लिया कि यही वह शिवावतार शंकर है, जिसे अद्वैत ब्रह्मविद्या का उपदेश करने के लिए हमने सहस्र वर्षों तक समाधि में अवस्थान किया और अब यही शंकर वेद-व्यास रचित ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर जगत में अद्वैत ब्रह्मविद्या का प्रचार करेगा।

तदनंतर एक शुभ दिन श्रीगोविन्दपादाचार्य ने शंकर को शिष्य रूप में ग्रहण कर लिया और उसे योगादि की शिक्षा देने लगे। अन्यान्य संन्यासियों ने भी उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। प्रथम वर्ष उन्होंने शंकर को हठयोग की शिक्षा दी। वर्ष पूरा होने के पूर्व ही शंकर ने हठयोग में पूर्ण सिद्ध प्राप्त कर ली। द्वितीय वर्ष में शंकर राजयोग में सिद्ध हो गये। हठयोग और राजयोग की सिद्धि प्राप्ति करने के फलस्वरूप शंकर बहुत बड़ी अलौकिक शक्ति के अधिकारी बन गये। दूरश्रवण, दूरदर्शन, सूक्ष्म देह से व्योममार्ग में गमन, अणिमा, लघिमा, देहान्तर में प्रवेश एवं सर्वोपरि इच्छामृत्यु शक्ति के वे अधिकारी हो गये। तृतीय वर्ष में गोविन्दपादाचार्य अपने शिष्य को विशेष यत्नपूर्वक ज्ञानयोग की शिक्षा देने लगे। श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ध्यान, धारणा, समाधि का प्रकृत रहस्य सिखा देने के बाद उन्होंने अपने शिष्य को साधनकर्मानुसार अपरोक्षनुभूति के उच्च स्तर में दृढ़ प्रतिष्ठित कर दिया।

ध्यानबल से समाधिस्थ होकर नित्य नव दिव्यानुभूति से शंकर का मन अब सदैव एक अतीन्द्रिय राज्य में विचरण करने लगा। उनकी देह में ब्रह्मज्योति प्रस्फुटित हो उठी। उनके मुखमण्डल पर अनुपम लावण्य और स्वर्गीय हास झलकने लगा। उनके मन की सहज गति अब समाधि की ओर थी। बलपूर्वक उनके मन को जीवभूमि पर रखना पड़ता था। क्रमशः उनका मन निर्विकल्प भूमि पर अधिरूढ़ हो गया।

गोविन्दपादाचार्य ने देखा कि शंकर की साधना और शिक्षा अब समाप्त हो चुकी है। शिष्य उस ब्राह्मी स्थिति में उपनीत हो गया है जहाँ प्रतिष्ठित होने से श्रुति कहती हैः

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

यह परावर ब्रह्म दृष्ट होने पर दृष्टा का अविद्या आदि संस्काररूप हृदयग्रन्थि-समूह नष्ट हो जाता है एवं (प्रारब्धभिन्न) कर्मराशि का क्षय होने लगता है। शंकर अब उसी दुर्लभ अवस्था में प्रतिष्ठित हो गये।

वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। नर्मदा-वेष्टित ओंकारनाथ की शोभा अनुपम हो गयी। कुछ दिनों तक अविराम दृष्टि होती रही। नर्मदा का जल क्रमशः बढ़ने लगा। सब कुछ जलमय ही दिखाई देने लगा। ग्रामवासियों ने पालतू पशुओं समेत ग्राम का त्यागकर निरापद उच्च स्थानों में आश्रय ले लिया।

गुरूदेव कुछ दिनों से गुफा में समाधिस्थ हुए बैठे थे। बाढ़ का जल बढ़ते-बढ़ते गुफा के द्वार तक आ पहुँचा। संन्यासीगण गुरूदेव का जीवन विपन्न देखकर बहुत शंकित होने लगे। गुफा में बाढ़ के जल का प्रवेश रोकना अनिवार्य था क्योंकि वहाँ गुरूदेव समाधिस्थ थे। समाधि से व्युत्थित कर उन्हे किसी निरापद स्थान पर ले चलने के लिये सभी व्यग्र हो उठे। यह व्यग्रता देखकर शंकर कहीं से मिट्टी का एक कुंभ ले आये और उसे गुफा के द्वार पर रख दिया। फिर अन्य संन्यासियों को आश्वासन देते हुए बोलेः "आप चिन्तित न हों। गुरूदेव की समाधि भंग करने की कोई आवश्यकता नहीं। बाढ़ का जल इस कुंभ में प्रविष्ट होते ही प्रतिहत हो जायेगा, गुफा में प्रविष्ट नहीं हो सकेगा।"

सबको शंकर का यह कार्य बाल क्रीड़ा जैसा लगा किन्तु सभी ने विस्मित होकर देखा कि जल कुंभ में प्रवेश करते ही प्रतिहत एवं रूद्ध हो गया है। गुफा अब निरापद हो गई है। शंकर की यह अलौकिक शक्ति देखकर सभी अवाक् रह गये।

क्रमशः बाढ़ शांत हो गई। गोविन्दपादाचार्य भी समाधि से व्युत्थित हो गये। उन्होंने शिष्यों के मुख से शंकर के अमानवीय कार्य की बात सुनी तो प्रसन्न होकर उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहाः

"वत्स ! तुम्हीं शंकर के अंश से उदभूत लोक-शंकर हो। गुरू गौड़पादचार्य के श्रीमुख से मैंने सुना था कि तुम आओगे और जिस प्रकार सहस्रधारा नर्मदा का स्रोत एक कुंभ में अवरूद्ध कर दिया है उसी प्रकार तुम व्यासकृत ब्रह्मसूत्र पर भाष्यरचना कर अद्वैत वेदान्त को आपात विरोधी सब धर्ममतों से उच्चतम आसन पर प्रतिष्ठित करने में सफल होंगे तथा अन्य धर्मों को सार्वभौम अद्वैत ब्रह्मज्ञान के अन्तर्भुक्त कर दोगे। ऐसा ही गुरूदेव भगवान गौड़पादाचार्य ने अपने गुरूदेव शुकदेव जी महाराज के श्रीमुख से सुना था। इन विशिष्ट कार्यों के लिए ही तुम्हारा जन्म

हुआ है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम समग्र वेदार्थ ब्रह्मसूत्र भाष्य में लिपिबद्ध करने में सफल होंगे।"

श्री गोविन्दपादाचार्य ने जान लिया कि शंकर की शिक्षा समाप्त हो गई है। उनका कार्य भी सम्पूर्ण हो गया है। एक दिन उन्होंने शंकर को अपने निकट बुलाकर जिज्ञासा कीः

"वत्स ! तुम्हारे मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह है क्या ? क्या तुम भीतर किसी प्रकार अपूर्णता का अनुभव कर रहे हो ? अथवा तुम्हें अब क्या कोई जिज्ञासा है ?"

शंकर ने आनन्दित हो गुरूदेव को प्रणाम करके कहाः

"भगवन ! आपकी कृपा से अब मेरे लिए ज्ञातव्य अथवा प्राप्तव्य कुछ भी नहीं रहा। आपने मुझे पूर्णमनोरथ कर दिया है। अब आप अनुमति दें कि मैं समाहित चित्त होकर चिरनिर्वाण लाभ करूँ।"

कुछ देर मौर रहकर श्री गोविन्दपादाचार्य ने शान्त स्वर में कहाः

"वत्स ! वैदिक धर्म-संस्थापन के लिए देवाधिदेव शंकर के अंश से तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हें अद्वैत ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने के लिए मैं गुरूदेव की आज्ञा से सहस्रों वर्षों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अन्यथा ज्ञान प्राप्त करते ही देहत्याग कर मुक्तिलाभ कर लेता। अब मेरा कार्य समाप्त हो गया है। अब मैं समाधियोग से स्वस्वरूप में लीन हो जाऊँगा। तुम अब अविमुक्त क्षेत्र में जाओ। वहाँ तुम्हें भवानिपति शंकर के दर्शन प्राप्त होंगे। वे तुम्हें जिस प्रकार का आदेश देंगे उसी प्रकार तुम करना।"

शंकर ने श्रीगुरूदेव का आदेश शिरोधार्य किया। तदनन्तर एक शुभ दिन श्रीगोविन्दपादाचार्य ने सभी शिष्यों को आशीर्वाद प्रदान कर समाधि योग से देहत्याग कर दिया। शिष्यों ने यथाचार गुरूदेव की देह का नर्मदाजल में योगीजनोचित संस्कार किया।

गुरूदेव की आज्ञा के अनुसार शंकर पैदल चलते-चलते काशी आये। वहाँ काशी विश्वनाथ के दर्शन किये। भगवान वेदव्यास का स्मरण किया तो उन्होंने भी दर्शन दिये।

अपनी की हुई साधना, वेदान्त के अभ्यास और सदगुरू की कृपा से अपने शिवस्वरूप में जगे हुए शंकर 'भगवान श्रीमद् आद्य शंकराचार्य' हो गये।

बाद में वे मंडनमिश्र के घर शास्त्रार्थ करने गये। मंडनमिश्र बड़े विद्वान थे। उनके घर में पाले हुए तोते मैना भी वेद का पाठ करते थे वे ऐसे धुरन्धर पंडित थे। लेकिन शंकराचार्य सदगुरू प्रसाद से आत्मानुभव में परितृप्त थे। उन्होंने मंडनमिश्र को शास्त्रार्थ में परास्त किया। वे ही मंडनमिश्र फिर शंकराचार्य के चार मुख्य शिष्यों में से एक हुए, सुरेश्वाचार्य। शंकराचार्य का दूसरा शिष्य तोटक तो अनपढ़ था। फिर भी शंकराचार्य की कृपा पचाने में सफल हो गया। तोटक, तोटक नहीं बचा, तोटकाचार्य हो गया।

देवगढ़ के दीवान साहब जनार्दन स्वामी से आत्मज्ञान पाकर एकनाथ, संत एकनाथ जी के रूप में प्रकट हुए। उनके आश्रम में एक विधवा माई का लड़का पूरणपोड़ी खाने के लिए रहा

करता था। उसका नाम ही पड़ गया था पूरनपोड़ा। संत एकनाथ जी में उसकी अटूट श्रद्धा-भक्त थी। संत एकनाथजी जब संसार से प्रयाण करने को थे तब उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाया और कहाः "मैं एक ग्रन्थ लिख रहा हूँ जिसे पूरा नहीं कर सकूँगा। मेरे जाने के बाद पूरनपोड़ा से कहना, वह उस ग्रन्थ को पूरा कर देगा।"

व्यवस्थातंत्र के लोगों ने कहा किः "आपका बेटा हरि पण्डित पढ़ लिखकर शास्त्री हुआ है, वह ग्रंथ पूरा करेगा। यह अनपढ़ लड़का क्या पूरा करेगा ?"

एकनाथ जी ने कहाः "वह लड़का मुझे पिता मानता है, गुरू नहीं मानता। मेरे प्रति उसकी पिताबुद्धि है, गुरूबुद्धि नहीं है। मेरे प्रति उसमें श्रद्धा नहीं है और बिना श्रद्धा के ज्ञान हृदय में प्रविष्ट नहीं होता। पूरनपोड़ा पूरनपूड़ी खाने की आदतवाला तो है लेकिन साथ ही साथ उसके अन्दर श्रद्धा की सुहावनी धारा है। वही पूरनपोड़ा ग्रन्थ पूरा कर सकेगा। तुम चाहो तो पहले भले मेरे बेटे को ग्रंथ पूरा करने के लिए देना। लेकिन जब न कर पाये तो पूरनपोड़ा तो जरूर ही कर देगा।

हुआ भी ऐसा ही। वह शास्त्री बना हुआ लड़का ग्रंथ पूरा न कर सका लेकिन गुरू के वचनों में श्रद्धा रखकर यात्रा करने वाला वह अनपढ़ पूरनपोड़ा ने ग्रंथ पूरा कर दिया। यह है गुरूओं के कृपा-प्रसाद का चमत्कार।

ईशकृपा बिना गुरू नहीं गुरू बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं गावहिं वेद पुरान।।

उन गुरूओं का ज्ञान हम लोगों में अधिक से अधिक स्थिर हो, अधिक से अधिक फले फूले.......! गुरू की पूजा, गुरू का आदर कोई व्यक्ति की पूजा नहीं है, व्यक्ति का आदर नहीं है लेकिन गुरू की देह के अन्दर जो विदेही आत्मा है, परब्रह्म परमात्मा हैं उनका आदर है। किसी व्यक्ति की पूजा नही लेकिन व्यक्ति में जो लखा जाता है, उसमें जो अलख बैठा है उसका आदर है..... ज्ञान का आदर है..... ज्ञान का पूजन है..... ब्रह्मज्ञान का पूजन है।

गुरू तो यह इन्तजार करते हैं कि ऐसी घड़िया आ जाय कि शिष्य बदलकर गुरू के अनुभव से एक हो जाय। इसलिए जिन महापुरूषों ने शिष्यों के, साधकों के उद्धार के लिए संसार में ऐसे मार्ग प्रचलित किये हैं उन सबको पूरे-पूरे हृदय से कृतज्ञतापूर्वक, श्रद्धापूर्वक हम सब प्रणाम करते हैं। वे महापुरूष किसी रूप में हों...... दत्तात्रेय भगवान हों, शंकराचार्य भगवान हों, शुकदेव जी मुनि हों, जनक राजा हों, ज्ञानेश्वर महाराज हों, अखा भगत हों, संत तुकाराम हों, संत एकनाथ हों, जो संसार से पार हैं उन सब महापुरूषों को हम लोग बड़े प्यार से अपने हृदय में स्थापित करते हैं, उनके ज्ञान को अपने हृदय में धारण करते हैं। ॐ......ॐ.....ॐ......

हे आत्मारामी ब्रह्मवेत्ता गुरू ! हमारा हृदय खुला है। आप और आपका ज्ञान हमारे हृदय में प्रविष्ट हो। आपका हम आवाहन करते हैं, आपको बुलाते हैं, आपके ज्ञान को हम निमंत्रण देते हैं।

हमारे हृदय में जिज्ञासा, ज्ञान और शान्ति का प्रागट्य हो। आपकी कृपा का सिञ्चन हो। हमारा हृदय उत्सक है। आप जैसे ब्रह्मवेत्ता के वचन हमारे हृदय में टिके।

गुरूपूर्णिमा के पावन पर्व पर हम यह पावन प्रार्थना करते हैं कि हे गुरूदेव ! वे दिन कब आयेंगे कि हमें यह संसार स्वप्न जैसा लगेगा ? वे दिन कब आयेंगे कि हर्ष के समय हमारे हृदय में हर्ष न होगा.... शोक के समय हमारे हृदय में शोक न होगा और हम सुख-दुःख दोनों के साक्षी हो जायेंगे। वे दिन कब आयेंगे कि ब्रह्मज्ञानी महापुरूषों का अनुभव हमारा अनुभव हो जायेगा ?

हम भाग्यवान तो हैं..... सचमुच हम महाभाग्यवान हैं कि हम ब्रह्मविद्या सुन पाते हैं, ब्रह्मज्ञान सुन पाते हैं। ॐ...... ॐ......ॐ......

अब हम गुरूदेव की मानस पूजा कर लेंगे। मानसिक ढंग से, हृदय के भाव से उनकी प्रार्थना कर लेंगे। उनके प्रति हृदय में अहोभाव भरते-भरते पवित्र होते जायेंगे.... कृतज्ञता व्यक्त करते जायेंगे।

मन ही मन भावना करो कि हम उनके चरण धो रहे हैं। सप्ततीर्थों के जल से गुरूदेव के पदारविंद को नहला रहे हैं। बड़े आदर और कृतज्ञता के साथ गुरूदेव के श्रीचरणों में दृष्टि रखते हुए.... श्रीचरणों को प्यार करते हुए पैर पखार रहे हैं....। उनके पावन ललाट में शुद्ध चन्दन का तिलक कर रहे है.... अक्षत चढ़ा रहे हैं। अपने हाथों से बनायी हुई गुलाब के फूलों की सुहावनी माला अर्पित करके अपने हाथ पवित्र कर रहे हैं.... हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर उनको अपना अहंकार भेंट कर रहे हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवें मन की चेष्टाएँ उन गुरूदेव के चरणों में समर्पित कर रहे हैं.....।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
करोमि यद् यद् संकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि।।

शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से अथवा प्रकृति के स्वभाव से जो-जो करते हैं वह सब समर्पित करते हैं। हमारे जो कुछ भी कर्म हैं। हे गुरूदेव ! वह सब आपके चरणों में समर्पित हैं.....। हमारा कर्त्तापन का भाव, भोक्तापन का भाव आपके चरणों में समर्पित है।

राजा जनक को जब बोध हुआ तब उनका हृदय कृतज्ञता से भर गया। गद् गद् कण्ठ होकर गुरूदेव अष्टावक्र मुनि से कहाः "गुरूदेव ! आपने मुझे शाश्वत का बोध दिया है.... शाश्वत के अमृत से परितृप्त किया है। बदले में मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? फिर भी मैं कृतघ्न न होऊँ इसलिए आपसे माफी माँगता हूँ कि आप नाराज न होना। मुझे फूल नहीं तो फूल की पंखुड़ी देने का मौका देना। हँसी मत उड़ाना, नाराज मत होना। आपने तो दिया है अखण्ड अमृत और मैं दे रहा हूँ मिटने वाली चीजें। फिर भी नाराज न होना। हे मेरे गुरूदेव ! आज तक जो मैंने सत्कृत्य किये हैं वे सब आपको समर्पित हों। आपकी दीर्घ आयु रहे। आपका सामर्थ्य और बढ़ता रहे। आपके श्रीचरणों में यह प्रार्थना करते हुए मैं, मेरा परिवार और मेरा राज्य आपको समर्पित हो

रहे हैं। मैंने जो तालाब, बावड़ियाँ खुदवाई थी, गौशालाएँ खुलवाई थीं, प्याऊ लगवाये थे, अन्नक्षेत्र चालू करवाये थे, ये सब सत्कृत्य आपके पावन श्रीचरणों में अर्पित हैं। फिर भी हे नाथ ! मैं आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। सदगुरू के कर्जे से मुक्त होने की मुझे जरूरत भी नहीं दिखती है। गुरूदेव का कर्जा भले ही सिर पर रहे। संसार के कर्जदार होने की अपेक्षा गुरू के ज्ञान का कर्जा जिसके सिर पर है उसके सिर पर संसार का कर्जा, जन्म-मरण का कर्जा नहीं टिक सकता।"

"गुरूदेव ने कहाः "बेटा ! तू चिन्ता मत कर। मैंने ज्ञान दिया उसका कर्जा वसूल करने के लिए मैं तुझे किसी जन्म में नहीं डालूँगा। इस ज्ञान में तू निरन्तर प्रतिष्ठित रह और अगर कोई प्यासा आवे तो उसकी प्यास भी मिटाया कर। उसको भी आत्म-अमृत से तृप्त किया कर।"

क्या महापुरूषों की उदारता है ! क्या ब्रह्मवेत्ताओं की महानता है ! जीवन की बाजी लगाकर जो चीज पायी वह बीज प्रेम से सहज स्वाभाविक ढंग से हमारे दिलों में भर देते हैं। इससे लिए क्या-क्या नुस्खे आजमाते हैं ! क्या-क्या युक्तियाँ खोजते हैं ! न जाने क्या-क्या तरकीबें लड़ाते हैं ! ......ताकि यह जन्मों से सोया हुआ, युगों से कर्मों की जाल गूँथता हुआ जीव मुक्त हो जाय।

जिन मुक्त पुरूषों ने ऐसे मार्ग बनाये हैं, ब्रह्मज्ञान को प्रकट करने के नुस्खे पैदा किये हैं उन महापुरूषों में से एक थे अष्टावक्र। उनके चरणों में जनक अपना सर्वस्व सौंपकर भी कहता है किः "मैंने अभी कुछ नहीं दिया गुरूदेव ! क्योंकि आपने तो शाश्वत दिया और मैं जो भी दे रहा हूँ वह नश्वर है। यह देखकर आप नाराज न होना और मेरी हँसी न उड़ाना। प्रेम से स्वीकार करना नाथ !" ऐसा कहते हुए राजा जनक गुरूदेव के चरणों में मस्तक रख देते हैं। मानो कहते हैं कि अब यह मस्तक अन्यत्र कहीं नहीं झुकेगा। गुरूदेव की पूजा के बाद दूसरी कोई पूजा शेष नहीं बचती। देवी देवताओं की पूजा के बाद कोई पूजा रह जाय लेकिन ब्रह्मवेत्ताओं का ब्रह्मज्ञान जिसके जीवन में प्रतिष्ठित हो गया फिर उसके जीवन में किसकी पूजा बाकी रहे ? जिसने सदगुरू के ज्ञान को पचा लिया, सदगुरू की पूजा कर ली उसे संसार खेलमात्र प्रतीत होता है। राजा जनक ने संसार में खेल की नाँई व्यवहार करते हुए जीवन्मुक्त होकर परम पद में विश्रान्ति पायी।

ऐसे ही तुम भी उन महापुरूषों की, ब्रह्मवेत्ता गुरूओं की कृपा को हृदय में भरते हुए, ज्ञान को भरते हुए, आत्म-शान्ति को भरते हुए, उनके वचनों पर अडिगता से चलते हुए गुरूपूर्णिमा के इस पावन पर्व पर घड़ीभर अन्तर्मुख हो जाओ।

गुरूपूर्णिमा के पर्व पर परमात्मा स्वयं अपना अमृत बाँटते हैं। वर्ष भर के अन्य पर्व और उत्सव यथाविधि मनाने से जो पुण्य होता है उससे कई गुना ज्यादा पुण्य यह गुरूपूर्णिमा का पर्व दे जाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

राही रूक नहीं सकते

ब्रिटिश शासन के जमाने की बात है।

इटावा में सप्रू साहब डिप्टी कलेक्टर थे। उनका चाकर था मनहर नायी। एक रात भोजन करके सप्रू साहब पलंग पर आराम कर रहे थे। मनहर पैर दबा रहा था। साहब बोलेः

"अरे मनहर ! कोई कहानी सुना।"

"साहब ! आपने तो बहुत किताबें पढ़ी हैं और कहानियाँ सुनी हैं। आप ही सुनाओ।"

"नहीं.....। तू कहानी सुना। मैं सोते सोते सुनुँगा।"

"वाह जी....! मैं कहानी सुनाऊँ और आप सोते रहें। मैं क्या ऐसे ही बकता रहूँ ?"

"नहीं... नहीं....। मैं चाव से सुनुँगा।"

"अच्छा, तो सुनो। लेकिन 'हूँ.... हूँ...'. करते रहना। मुझे पता रहे कि आप सुन रहे हैं। नहीं तो आप सो जायें और मैं सुनाता रहूँ तो मेरी शक्ति ऐसे ही व्यर्थ चली जायगी।"

वाणी का जो संयम करता है उसकी वाणी का प्रभाव भी होता है। बिन जरूरी बोलना नहीं, बिन जरूरी सुनना नहीं, बिन जरूरी देखना नहीं। ऐसे मनुष्य की वाणी का, मन का, बुद्धि का, जीवन का विशेष प्रभाव होता है।

मनहर नायी ने कहानी प्रारंभ करते हुए कहाः "साहब जी ! तैयार हो जाइये। कहानी सुनिये।

गर्मियों के दिन थे। अरब का सम्राट अपने महल की छत पर शाही पलंग लगवाकर आराम किया करता था। केवड़े का छिड़काव किया जाता था। शय्या पर सुगन्धित सुकोमल पुष्प बिछाये जाते थे।

पूनम की रात थी। सोने का पलंग था, रेशम की निवाड़ से भरा गया था, कालीन बिछा था, उस पर गद्दा बिछा था। फिर एक कालीन बिछा था। उस पर सफेदी बिछी थी। अगल-बगल चार तकिये रखे थे। चाँद की अमृतवृष्टि हो रही थी। पलंग सजाने वाली दासी ने पलंग सजाया। दिनभर की थकी माँदी थी। बिस्तर सजाकर सोचा कि राजा साहब इस पर आराम फर्माते हैं। पुष्पों की सुगन्ध आ रही है। चाँद से शीतलता बरस रही है। मन्द मन्द पवन लहरा रहा है। कितना मजा आता होगा ! बादशाह सलामत अभी भोजन करेंगे, बाद में आयेंगे। तब तक जरा सा लेटकर देख लूँ दो-चार मिनट।

वह पलंग पर लेटी। थकी तो थी ही। पलंग पर पुष्पों की गुदगुदी। केवड़े की सुगन्ध। मन्द मस्तानी हवा। पूनम की चाँदनी। तीन मिनट भी नहीं बीते, दासी टप से सो गयी।

बादशाह सलामत भोजन करके आये। देखा तो पलंग पर दासी ! जवानी हो..... सत्ता हो.... राजवैभव हो.... भोग की सामग्री हो... चापलूसी करने वाले लोग हों..... फिर..... अहंकार को बाकी बचता भी क्या है ? वह आग बबूला हो गया। अपनी बेगम को बुलाया। पूछाः 'इसको क्या सजा देनी चाहिए ? तू जो कहेगी वह सजा दी जाएगी, क्योंकि इसने तेरा अपमान किया है। तू ही फर्मान कर, इसको क्या सजा दी जाय ?"

दासी तो बेचारी भय से थर-थर काँप रही थी। पसीने से तरबतर हो गई। प्राण सभी को प्यारे होते हैं। प्राण बचाने के लिए वह दासी बादशाह सलामत के कदमों में गिर पड़ी और रोने लगी। धन, सत्ता, यौवन और उसमें अहंकार मिलता है तो आदमी में क्रूरता भी आती है।

'बादशाह सलामत की बेगम का अपमान....! बादशाह का अपमान.....! बादशाह के बिस्तर पर सोने की गुस्ताखी....! ....और फिर माफी ? हरगिज नहीं। वैसे तो फाँसी की सजा होनी चाहिए लेकिन दया करते हैं। बेगम ! तू ही सजा का फर्मान दे।'

बेगम ने कहाः "यह घण्टाभर पलंग में सोयी है। साठ मिनट के साठ कोड़े फटकारे जायें।' साठ कोड़े आदमी मारे तो वह बेचारी मर ही जाय ! ऐसा बादशाह सोच ही रहा था इतने में बेगम ने कहाः "मैं ही अपने हाथ से इसको मारूँगी। स्त्री है तो इसको मैं ही सजा दूँगी।"

बेगम ने कोड़ा दे मारा दासी की पीठ परः एक... दो... तीन.....। राजा गिनता जा रहा था। चार-पाँच कोड़ों में तो दासी गिर पड़ी। बेगम साहिबा भी थक गई। औरत की जात मुलायम होती ही है।

बादशाह एक..... दो....तीन....चार....पाँच..... कहकर गिनती गिनने लगा। तीस कोड़े तक दासी जोर-जोर से रोती रही, परन्तु इसके बाद दासी की मति पलट गई। तीस से साठ तक दासी खूब हँसती रही।

वह हास्य भी कोई गहराई को छूकर आ रहा था। कोई समझ की धारा से प्रकट हो रहा था। बादशाह ने पूछाः "पहले रोती थी और बाद में हँसने लगी। क्या बात थी ?"

"जहाँपनाह ! प्रारंभ में कोड़े लगे तब बहुत पीड़ा हो रही थी। सोचा कि अब क्या करूँ ? यह शरीर तो एक दिन जलने वाला ही है। कोड़े खाकर मरे चाहे मिठाइयाँ खाकर मरे इस मरने वाले शरीर को कोड़े लगते हैं। किसी बाबा की वाणी सुनी थी वह याद आ गई तो सहनशक्ति आ गई। सहनशक्ति आते ही ज्ञान की किरण मिली कि मैं तो केवल साठ मिनट सोयी हूँ और साठ कोड़े लगे हैं लेकिन जो रोज सोते हैं, रातभर सोते हैं, उनको न जाने कितनी सजा होगी ? अच्छा है कि मुझे अभी सजा मिल गयी और मैं ऐसी आदत से बच गई, अन्यथा मुझे भी आदत पड़ जाती तो मैं भी ऐसे पलंग की इच्छा करती, केवड़े की सुगन्ध की, पुष्पाच्छादित शय्या की इच्छा करती। अल्लाह की बन्दगी की इच्छा नहीं होती। भोग में विघ्न डालकर मेरे मालिक ने मुझे योग में प्रेरित कर दिया। मैं यह सोचकर हँसी कि सजा देने वालों को अपनी सजा की खबर ही नहीं है।"

इतना सुनते ही बादशाह की बुद्धि बदल गई। बादशाह ने ताज फेंक दिया, इमामा फेंक दिया, जामा फेंक दिया और जूते फेंककर फकीरी कफनी पहन ली। श्रीरामचन्द्रजी दिन में वन की ओर गये थे, बादशाह ठीक आधी रात को वनगामी हो गया।"

मनहर ने यह कहानी डिप्टी कलेक्टर साहब को सुनायी।

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर होगा क्या ? धीरज रखो। सुनो। फिर उस बादशाह ने खुदा की बन्दगी की, मालिक को याद किया। जीवन धन्य किया।"

सप्रू साहब जा तो रहे थे नींद में लेकिन सदा सदा के लिए उनकी नींद खुल गई। वे बोलेः

"मनहर ! तुमने बहुत अच्छा किस्सा कहा, किन्तु अब हमको भी इस पलंग से उतरना चाहिए। हम साढ़े पाँच सौ रूपये तनख्वाह पाते हैं। जो गरीब हैं, भूखे हैं, नंगे हैं, लाचार हैं, थके हैं, माँदे हैं उनसे भी सरकार टैक्स लेकर हमको पगार देती है। पीड़ित व्यक्तियों का पैसा लेकर मैं भी गिलम गालीचे बसा रहा हूँ। मैं भी चैन की नींद लेकर आयुष्य बरबाद कर रहा हूँ। नहीं, नहीं.... अब यह हरगिज नहीं होगा।"

मनहर कहता हैः "साहब ! आप क्या कहते हैं ? क्या हो गया आपको ?"

"आज तूने बहुत बढ़िया कथा सुनायी।"

"साहब ! यह तो कहानी है।"

"नहीं....! यह सत्य घटना है अथवा सत्य को छूती हुई बात है।"

सप्रू साहब पलंग से नीचे उतरे। भूमि पर एक सादी चद्दर बिछाकर उस पर निद्राधीन हुए।

दूसरे दिन सुबह सप्रू साहब उठे। अपनी डिप्टी कलेक्टर की पोस्ट का इस्तीफा लिख दिया। पत्नी को माँ कहकर पैर छू लिये। बेटे से कहाः "तू भगवान का बेटा है। अगले जन्म में किसी का बेटा था। इस जन्म के बाद भी न जाने किसका बेटा होगा"

बेटा बड़ा हो और सुख दे यह मूर्खों की मान्यता है। सुख तो अपनी समझ से, अपनी तपस्या से होता है। बेटे बड़े हों और सुख दें ऐसी भावना से जो बेटों को पालते हैं उनको बुढ़ापे में दुःख के सिवा भी कुछ नहीं मिलता।

'"क्या इन हाड़ मांस के पुतलों से भगवान अनन्त गुने शक्तिशाली नहीं हैं ? जो मिट्टी के पुतलों में भरोसा रखता है और परमात्मा में भरोसा खोता है उसको तो रोना ही पड़ता है। मुझे बुढ़ापे में रोना पड़े उसके पहले ही मैं चेत गया। अब तू जान और तेरा काम जाने। पढ़ो, लिखो, जो तुम्हारा प्रारब्ध होगा वह मिलेगा।"

उस समय इटावा जिले में एक अंग्रेज कलेक्टर थे और तीन डिप्टी कलेक्टर थे। उन सबने सुना कि सप्रू साहब ने इस्तीफा दे दिया है और अपने बंगले के पास इमली के पेड़ के नीचे एक मात्र फटा कम्बल लेकर फकीरी वेश में बैठ गये हैं। कलेक्टर, डिप्टी कलेक्टर, सुपरिन्टेंडेंट पुलिस, कोतवाल आदि सब उनको समझाने आये। अंग्रेज कलेक्टर बोलाः

"अरे सप्रू ! तुम क्या करते हो ? फकीर का वेश बनाया है ?"

"हाँ।"

"मेमसा'ब का क्या होगा ? लड़के का क्या होगा ? अभी सरकार की नौकरी करो। पाँच घण्टे का फर्ज अदा करो, बाकी के समय में फकीरी करो। जब लड़का बड़ा हो जाय, मेमसा'ब बूढ़ी हो जाय, पेन्शन मिलने लगे तब पूरे फकीर बनना। हम भी तुम्हारे साथ फकीर बनेंगे। राम राम करेंगे। तुम्हारे जैसे अमलदार का इस्तीफा हम नहीं लेते।

"तुम लो चाहे न लो। मैं अब बन्दों की गुलामी छोड़कर मालिक की गुलामी करूँगा। तुमको रिझाने के बदले उसी को ही रिझाऊँगा।"

उन्होंने बहुत समझाया लेकिन सप्रू साहब दृढ़ रहे अपने निर्णय में। साथवाले डिप्टी कलेक्टर ने अंग्रेज से कहाः

"साहब ! कभी-कभी कुछ पुण्य की घड़ियाँ होती हैं तब बात लग जाती है और आदमी की जिन्दगी बदल जाती हैं। किसी पावन क्षण में एक लब्ज भी लग जाय तो जीवन करवट ले लेता है। अब इनकी राह बदल गई है। इनका मन काम में से मुड़कर राम की ओर चल पड़ा है। तुम्हारे हमारे समझाने से कुछ न होगा।

मेरा भाई बाँदा जिले में तहसीलदार था। वह नदी के किनारे कहीं जा रहा था। नदी की उस हरियाली भूमि में एक साँप मेढक को पकड़े हुए था। मेंढक 'ट्रें.....ट्रें....ट्रें....' चिल्ला रहा था। उसका आक्रन्द सुनकर मेरा भाई घर आया और नौकरी से इस्तीफा दे दिया। बोलाः "हम लोग भी काल के मुँह में पड़े हैं। हमें भी काल ने पकड़ा ही है। संसार के दुःखों से कराह रहे है फिर भी हम अपने को तहसीलदार मानते हैं, वकील मानते हैं, डॉक्टर मानते हैं, इंजीनियर मानते हैं, सेठ-साहूकार मानते हैं। धिक्कार है ऐसे जीवन को !"

"मेरा भाई तहसीलदार छोड़कर फकीर हो गया। अब पता नहीं कहाँ है, गंगा किनारे है कि जमुना किनारे है कि नर्मदा किनारे है. किसी भी किनारे हो लेकिन है मोक्ष के किनारे।"

सप्रू साहब को और भी उत्साह मिल गया। अंग्रेज साहब ने सप्रू साहब को बहुत समझाया।

नासमझ लोग साधकों को समझाने का ठेका ले बैठते हैं। यह सोये हुए लोगों की दुनियाँ है। इसमें कोई कोई जागता है तो फिर उसे सुलाने की कोशिश करते हैं। लेकिन जिसको शब्द की चोट लग जाती है वह फिर नहीं सोता। सप्रू साहब सोये नहीं। जगने की यात्रा पर चलते रहे। इटावा दक्षिण दिशा में यमुना के किनारे पर अपना डेरा डाला। हाथ में एक डण्डा रखते थे। मन लगता तो हरि का ध्यान स्मरण करते। नहीं तो डण्डे से खटक खटक करते थे। अतः लोग उनको खटखटा बाबा कहने लगे।

दस बजे के करीब वे झोली लेकर भिक्षा लेने शहर में जाते थे। पब्लिक उनको पहचानती तो थी ही। सभी चाहते थे कि वे आज हमारे द्वार पर आयें। झोली में रोटी लेते थे और उस

झोली को यमुना जी में डुबाते थे। तदनन्तर उस झोली को एक इमली की डाली पर लटका देते थे। चार बजे तक झोली लटकती रहती थी। फिर कुछ स्वयं खाते और बाकी बन्दरों को खिला देते थे। फटी कमली के सिवा कोई वस्त्र पास नहीं रखते थे। इस प्रकार इटावा के उस डिप्टी कलेक्टर ने इटावा में ही बारह साल घोर तपस्या की।

एक बार इन खटखटा बाबा ने भण्डारा किया। घी की कमी पड़ गई। कड़ाही चढ़ी हुई थी। शहर दूर था। बाबा ने एक चेले से कहा कि दो कलसा यमुनाजल लाकर कड़ाही में छोड़ दो। वैसा ही किया गया। यमुना का जल घी बन गया। पूड़ी तली गई।

यमुनाजी के बहाव में पद्मासन में बैठे हुए कोई सिद्ध जा रहे थे। उन्होंने कहाः "अरे खटखटा ! जरा पानी तो पिला दे !" खटखटा बाबा कमण्डल में पानी लेकर यमुनाजी में पानी पर चलते चलते गये और सिद्ध को पानी पिलाया। तब सिद्ध ने कहाः "मैं भी सिद्ध और तू भी सिद्ध हो गये।"

खटखटा बाबा की समाधि पर अब अनेक इमारतें बन गयी हैं। समाधि का मन्दिर और विद्यापीठ की इमारत दर्शनीय है। सहस्रों प्राचीन पुस्तकों का अपूर्व संग्रह किया गया है। साल में एक बार मेला लगता है। भारत के विद्वानों, योगियों और पण्डितों को निमंत्रण देकर बुलाया जाता है। खूब व्याख्यान होते हैं। खटखटा बाबा की समाधि इटावा का तीर्थस्थान है। इटावा जिले का बच्चा बच्चा खटखटा बाबा के नाम से परिचित है।

कहाँ तो अपने बंगले पर आराम और विलास.... और कहाँ कठोरता भरी फकीरी ! जिनके खून पसीने के पैसों से ऐशोआराम कर रहे हैं उनका बदला चुकाने का अवसर आ जाय उससे पहले ही चेत जायें तो अच्छा है।

जो शरीर का चैन और आराम चाहते हैं, शरीर का सुख और सुविधा चाहते हैं, ऐसे ही विलास में जीवन पूरा कर देते हैं वे साँप के मुँह में मेंढक जैसे हैं। काल के मुँह में पड़ा हुआ जीव शरीर के चैन और आराम की फिक्र करता है। लेकिन सच्चे साधक, सच्चे जिज्ञासु इस बात की फिक्र करते हैं कि आयु बीत रही है। जीवन नष्ट हो रहा है। देखते ही देखते दादा मरा.... दादी मरी.... चाचा मरा.... फूफी मरी... सब मरने वाला यहाँ हैं। काल-कराल किसी को छोड़ता नहीं। अनेक रूप लेकर, अनेक निमत्त बनाकर काल प्राणी मात्र को अपने पाश में बाँधकर मौत की खाई में ले जाता है।

राजा विक्रमादित्य प्रजा का खूब ख्याल रखते थे। वेश बदलकर नगरचर्चा सुनने निकलते थे ताकि राज्य में क्या हो रहा है इसका पता चले।

जिसको जो पद है, जो सत्ता है उस पद और सत्ता का ठीक उपयोग नहीं है कि उसके द्वारा बहुजन हिताय प्रवृत्ति हो। वह राजा ऐसा मानता था कि जो राजा प्रजा के दुःख पर दृष्टि नहीं डालता, प्रजा के दुःख मिटाने की चिन्ता नहीं करता, केवल वाहवाही और ऐशोआराम के लिए राज्य करता है, वह राजा नरक का अधिकारी होता है।

एक बार विक्रमादित्य ने देखा कि सामने से रीछ आ रहा है। आते-आते लोटने पोटने लगा। बड़ी विचित्रता थी उसके लोटने-पोटने में। यह कोई साधारण रीछ मालूम नहीं होता था। राजा कुछ सोचे इतने में वह रीछ एक सुन्दरी षोडश वर्षीया आकर्षक युवती बन गयी। राजा आश्चर्यचकित होकर देखता रह गया। युवती नयनलुभावन चाल ढाल से चलती हुई किसी पनघट पर जा बैठी। इतने में दो सिपाही वहाँ से गुजरे। उनको तिरछी नजर से निहारती, घायल करती हुई वह बोलीः "क्यों जी ! आपके पास कुछ खाने-पीने का है क्या ?"

"खाने को हमारे पास अभी नहीं है लेकिन तुम्हारे जैसी सुन्दरी को इस एकान्त में भूख लगी है तो हम लाये बिना रह भी कैसे सकते हैं ?"

एक तो युवान ललना का नेत्र-कटाक्ष और दूसरा वाणी का लालित्य ! सिपाही घायल हो गये। दोनों भाई थे। कुछ कारणवश नौकरी से छुट्टी लेकर अपने गाँव जा रहे थे। बड़ा भाई बोलाः

"आप बैठिये। मैं नगर से खाने पीने को लाता हूँ।"

वह नगर में गया और छोटा भाई वहाँ रहा। वह सुन्दरी छोटे से बोलती हैः "तुम मेरे साथ भाग चलो।"

"देवी ! तुमने मेरे बड़े भाई से मीठी बातें की है, मेरे भाई से नजर मिलायी है अतः तुम मेरी भाभी हुई। भाभी तो माता के समान होती है। ऐसी बात मत करो।"

"बेवकूफ कहीं का ! तेरे भाई की उम्र कितनी है ? उस बूढ़े के बाल सफेद हैं....।"

"वे होंगे 48-50 के।"

"और तेरी उम्र कितनी है ?"

"मेरी उम्र तीस वर्ष की।"

"और मेरी उम्र ?"

"वह तो मैं नहीं जानता।"

"फिर भी....?"

"होगी सोलह-सत्रह साल।"

"मैं सोलह साल की.... 50 वर्ष के बूढ़े के साथ शादी करूँगी कि तेरे जैसे जवान के साथ....?"

वह निरूत्तर हो गया।

"कुछ भी लेकिन तुम तो मेरी भाभी हो।"

"बेवकूफ कहीं का ! मेरा कहना मान। भाग चल मेरे साथ।"

"नहीं... मैं भारत के धर्मग्रन्थों से परिचित हूँ। बड़े भाई के साथ जिसने औरत के भाव से निगाह डाल दी वह मेरी भाभी है..... माता के समान है।"

इतने में उस सुन्दरी ने अपनी आकर्षक साड़ी को इधर उधर से चीर डाला। कपड़े अस्त-व्यस्त कर लिये। बाल बिखेर दिये। बड़ा भाई मिठाई की पुड़िया लेकर आया।

"लो खाओ।"

"डाल दो कुँए में और तुम भी डूब मरो। मिठाई खिलाने आये। मुँह तो देखो ?"

"अरे कमललोचनी ! क्या हुआ तेरे को ?"

"पूछो अपने भाई से ! तुम चले गये तो वह मुझसे अनुचित व्यवहार करने लगा.....।" ऐसा कहकर वह रोने लगी। बड़ा भाई छोटे पर आग बबूला हो गयाः

"क्यों बे ! इतनी बदतमीजी ? तू मुझे जानता नहीं ?"

"भाई साब ! यह झूठ बोल रही है।"

"आया बड़े सच्चे का बेटा ! कमबख्त कहीं का।" लगा दिया तमाचा।

काम हमेशा अंधा होता है। काम को विकृत कर दो तो क्रोध का रूप ले लेगा। लेकिन काम को राम में बदल दो तो मोक्ष का रूप ले लेगा।

बड़ा भाई क्रुद्ध हो गया। कुछ का कुछ बड़बड़ाने लगा। स्त्री के आगे अपमान होता है तो ज्यादा चुभता है। थोड़ी शक्ति होती है तो भी ज्यादा उछल कूद मचाती है। यह माया ऐसी ही है।

यह सब व्यवहार में आप लोग भी अनुभव कर सकते हैं। जब बाजार से गुजरें और कोई मजाक कर दे या जरा सा अपमान कर दे तो इतना दुःख न होगा। जब मेमसा'ब साथ में हो फिर देखो। आपका रंग निराला होगा। अपने ढंग से स्कूटर पर जा रहे हो तो रंग एक होगा लेकिन पीछे माया बैठी है तो दिमाग में उसकी हवा भी साथ में होगी। इस माया से बचते रहना। वह अहं ले आती है, झगड़े ले आती है। लेकिन उसमें अगर मालिक को देखा, उसको भी मालिक के रास्ते लगा दिया तो वह तुम्हारा कल्याण कर सकती है और तुम उसका कल्याण कर सकती हो। नहीं तो ? तुम अकेले देवदर्शन के लिये जाते हो, आश्रम में अकेले सत्संग सुनते हो, अपने ढंग से मस्ती लूटते हो, लेकिन श्रीमती जी साथ में होती है और पास-पास में बैठे हो तो जब कोई बढ़िया बात सत्संग में आती है तब भीतर डूबने के बदले श्रीमती जी की तरफ ध्यान जाता है और इशारे से बताते हो कि कैसी बढ़िया बात है !

कई अनजान लोग मुझसे कहते हैं कि आप आदमियों को और महिलाओं को अलग-अलग क्यों बैठाते हैं ? मैं बोलता हूँ- "भाई ! हम ऐसे ही हैं।" हर एक को क्या बोलें ? सही बात यह है कि पुरूष का चुम्बकत्व स्त्रियों पर प्रभाव डालता है और स्त्रियों का चुम्बकत्व पुरूषों पर प्रभाव डालता है। इसीलिए अपने जीवन को महान् बनाने वाले व्यक्ति साधनमार्ग में जितना हो सके, एक दूसरे के कल्याण के लिए एक दूसरे के शरीर से बचते हैं। इस प्रकार कल्याण शीघ्र होता है। ऐसा महापुरूषों का कहना है।

तो उस बड़े भाई ने निकाली तलवार। छोटा भाई थोड़ा मर्यादावाला था लेकिन था तो कलयुगी ही। उसने भी म्यान से तलवार निकाली और दोनों ने एक दूसरे को खत्म कर दिया।

राजा विक्रमादित्य दूर बैठे सब देख रहे हैं कि वाह रे रीछ में से बनी हुए नारी ! वह महिला थोड़ी आगे चली फिर से जमीन पर लोटपोट हुई। लोटते लोटते सर्पिणी बन गई। राजा को आश्चर्य हुआ।

सर्पिणी चलती-चलती नदी की ओर जाने लगी। नदी में एक बड़ी नाव में तीन सौ आदमी आ रहे थे। सर्पिणी पानी को काटते हुए नदी में चली और नाव में जा गिरी। सब यात्री घबरा गये और एक तरफ हो गये। नाव उल्टी हो गई। तीन सौ आदमी डूब गये।

वह सर्पिणी नदी से बाहर आयी और एक ज्योतिषी का रूप ले लिया। गले में रूद्राक्ष की माला, ललाट में तिलक, बगल में पोथी। प्राचीन काल का ज्योतिषी टप-टप आगे जा रहा है। विक्रमादित्य ने पैर पकड़ लिये।

"भगवन् ! आप कौन हैं ? सच बताओ।"

"क्या मतलब ?"

"यह दास आपको तभी से देख रहा है जब आप रीछ बनकर आ रहे थे। फिर सुन्दरी बने, फिर सर्पिणी बने। अभी आप इस रूप में हैं। अभी तक मुझे पता नहीं चला कि आप कौन है ?"

"मैं काल कराल हूँ।"

"आप ऐसा क्यों करते हैं ?"

"जिस समय जिसकी जिस निमित्त में मृत्यु निर्मित हुई है उसको उस निमित्त से मैं मार देता हूँ। बहाने अलग-अलग हो जाते हैं.... जैसे नाव डूब गई, लेकिन व्यवस्था मेरी ही होती है। किन व्यक्तियों को कब मारना है, मुझे पता है। ईश्वर ने मुझे यह काम सौंपा है और योग्यता भी दी है।"

"तो बताने की कृपा करो कि मेरी मौत कब होगी ?" विक्रमादित्य ने पूछा।

"यह बताने की सरकार की आज्ञा नहीं है। तुम अभी बहुत दिनों तक जीवित रहोगे। तुम्हारे द्वारा ईश्वर अनेकों परोपकार के काम करायेंगे। तुम भी ईश्वराधीन और मैं भी ईश्वराधीन। अब जाओ।"

"फिर भी इतना तो बतला दीजिये कि मेरी मौत कैसे होगी ?"

"कोठे पर से गिरकर। जिस दिन तुम रपट पड़ोगे, समझ लेना कि बस मौत आ गयी।"

"अब आप किसकी घात में हैं ?"

"तुम्हारे अधिकार से बाहर का प्रश्न है।"

"प्रभु ! कृपा करके बताओ कि आपने रीछ बनकर क्या किया था ?"

"एक आदमी पेड़ पर चढ़ा लकड़ी काट रहा था। उसको पेड़ पर से गिराने के लिए मैं रीछ बन गया था और पेड़ पर चढ़ गया था, उसे गिराकर मारा था।"

"आप विविध प्रकार के रूप क्यों बनाते हैं।"

"जिसकी मौत जिस रूप से लिखी होती है, उसे मैं उसी बहाने से मारता हूँ।"

"हे देव ! क्या कोई आपके कराल हाथ से बचा भी है ?"

"हाँ....।"

कोई कोई जोगी बच गये, पारब्रह्म की ओट।
चक्की चलती काल की, पड़ी सभी पर चोट।।

ऐसे कोई विरले बच जाते हैं बाकी सब शिकार हो जाते हैं।"

"क्या करने से मौत नहीं आती ?"

"परमात्मा की शरणागति से।"

अच्छे काम करवाता ईश्वर है और आदमी की खोपड़ी में भूत घुस जाता है कि मैंने किया। मैंने मिल सँभाली..... मैंने मंदिर सँभाला... मैंने आश्रम सँभाला.... मैंने मठ सँभाला... मैंने समिति सँभाली.... मैंने इतना इतना काम किया।

अरे भाई ! तू अपने प्राण तो सँभालकर दिखा उसकी कृपा के बिना ? जिस व्यक्ति को अहं आ जाता है, काल का जोर उस पर चलता है।

"हे विक्रम ! जो अपने को अकर्त्तापद में स्थित करता है, जो परमात्मा की लीला में सहमत होता है, परमात्मा जो करता है वह होने देता है उस पर मेरा जोर नहीं चलता है। बाकी के जीवों का मैं भक्षण कर जाता हूँ।"

जब मौत आती है तब किसी का वश नहीं चलता और जब तक नहीं आती है तब तक मारने का वश भी किसी का नहीं चलता।

मौत से डरना या चिरंजीवी होने के लिए बचाव करना, टिकड़ियाँ खाना...... टॉनिक लेना.... इससे काम नहीं बनेगा। मौत को याद रखकर मौत से पार होने की तजवीज में जो रहता है उसके लिए फिर मौत नहीं होती।

इन कथाओं से, घटनाओं से हमें जगना है। विक्रमादित्य का विवेक तो जग गया, उसका तो काम हो गया। भरथरी का विवेक भी जग गया। बात अब हमारी है कि हम इतनी-इतनी कथाएँ सुनते हैं.... शायद हमारा भी खटका जग जाय..... ऐसी घड़ियाँ आ जाय कि हमें भी कोई कहानी चोट पहुँचा दे। ऐसा क्षण आ जाय कि कोई किस्सा, कोई कहानी, कोई घटना हमारे जीवन की घटना को बदल दे। ॐ......ॐ.......ॐ.........ॐ.......

बुद्ध ने देखा रोगी आदमी...... कोई आदमी मरा जा रहा था। घटना घट गई..... चल पड़े बुद्धत्व के रास्ते और भगवान बुद्ध हो गये। डिप्टी कलेक्टर ने कहानी सुनते-सुनते सब दे मारा। कम्बल लेकर फकीर हो गये।

ऐसे ही सिंध देश में पारूमल नाम का सिपाही था। वायसराय के आगमन के बन्दोबस्त में था। दो दिने से बेचारे को चैन की नींद नहीं और बैठकर कहीं भोजन नहीं खाया था। तीसरे दिन उसे छुट्टी मिली घर आने की। भोजन करने बैठा। एक ग्रास खाया, दूसरा हाथ में था..... इतने में साहब का आदमी आकर बोलाः

"डी.एस.पी. सा'ब बुलाते हैं।"

पारूमल को लगा कि अरे ! बन्दों की इतनी-इतनी खिदमत करते हैं फिर भी जिस रोटी के लिए वर्दी पहनते हैं, घरबार छोड़कर ड्यूटी पर जाते हैं, उस रोटी को खाने की भी फुरसत नहीं देते ? बन्दों की गुलामी का आखिर यही नतीजा ? उसने अपनी वर्दी और तमंचा बगल में लिया। धोती फाड़ी और दो टुकड़े कर दिये। एक टुकड़ा पहन लिया और दूसरा कन्धे पर ओढ़ लिया। वर्दी के कपड़े जाकर साहब के आगे दे मारे। बोलाः "यह तुम्हारी ड्यूटी और यह तुम्हारी वर्दी तुम्हीं सँभालो।"

"साहब बोलाः "हम तुम्हें प्रमोशन देना चाहते थे। यह तुम क्या कर रहे हो ?"

"साहब ! तुम्हारा प्रमोशन तो तुम्हारा दिया हुआ ही होगा। आखिर तो तुम्हारे नीचे ही रहेंगे। तुम भी किसी के नीचे और वह भी किसी के नीचे है। उन सबके ऊपर मौत। मौत के भी ऊपर है उसी मालिक की गुलामी अब करूँगा।"

साहब ने खूब समझाया लेकिन......

राही रूक नहीं सकते.......

जिसको सच्चे हृदय से लगन लग जाती है, चोट लग जाती है फिर वे नही रूकते। समझाने वाले समझाते रहो।

पारूमल चल पड़े। उनकी पत्नी मायके थी। गये वहाँ। ससुर जी दातुन कर रहे थे। देखा कि सूबेदार साहब पारूमल और यह भिखारी का वेश ? फकीर का वेश ? चिढ़ गये। पारूमल ने पूछाः "गंगा कहाँ है ?" पत्नी का नाम गंगा था।

"अब जा, तेरे जैसे लूखे को थोड़े ही गंगा दूँगा।"

"मैं गंगा को लेने नहीं आया हूँ, गंगा माता कहने को आया हूँ। मुझे दर्शन करा दो।"

"जा.......जा.......दर्शन परशन.....।"

"अच्छा हुआ।"

भलुं थयुं भांगी जंजाळ सुखे भजीशुं श्रीगोपाळ।।

पारूमल वापस आ गये। अपने घर में कमरा बन्द करके बैठ गये। जब जरूरी कुदरती हाजत होती थी तब उठते थे, बाकी बैठे रहते। परमात्मा से प्रार्थना करतेः

"हे प्रभु ! मैं कुछ नहीं जानता हूँ। लेकिन मुझे तुझको पाना है यह तू जानता है। मैं जैसा हूँ, अब तेरा हूँ। तू ही राह दिखा। तू ही मेरा राहबर हो जा। तू ही मेरा पथप्रदर्शक हो जा...... तू ही मेरा दाता.... तू ही मेरा स्वामी.....। प्रभु..... प्रभु......प्रभु !"

पारूमल कभी रोता, कभी हँसता, कभी सुन्न मुन्न हो जाता। कभी ध्यानस्थ रहता। आठ दिन तक कमरे में बन्द रहा। कुछ साधना की। एकाध कड़ी उसके हाथ लग गई। अनजाने में शिवनेत्र खुल गया। सामर्थ्य का केन्द्र सक्रिय हो गया।

पारूमल ने सोचा कि घरवालों से छुट्टी लूँगा तो देंगे नहीं। कोई कहेगा तू मेरा बेटा है, कोई कहेगा मेरा भाई है, कोई कहेगा मेरा काका है, कोई कहेगा मेरा मामा है। ये सब रोयेंगे, चीखेंगे। अब इनकी ममता को भी जरा आजमाकर देखें।

उनके कुटुम्ब का जवाहरात का धन्धा था। हीरे जवाहरात जड़ित सुहावने सुन्दर अलंकार आभूषण बनाकर शो केस में रखते थे बेचने के लिए। कई सुनार उनके यहाँ काम करते थे। बड़ी पेढ़ी थी। पारूमल जवाहरात लेकर हमाम दस्ते में डालकर कूटने लगा। गहनों पर दस्ते के एक धक्के से भाई का भाईपना टूट गया, चाचा का चाचापना चूर हो गया, मामा का मामापना मिटने लगा, भतीजे का भतीजापन भाग गया। संसारी सम्बन्धों में हमाम-दस्ते का एक प्रहार सहने की ताकत नहीं है। गहनों पर दो प्रहार किये तो सब अपने पराये हो गये। कोई कुछ बोले कोई कुछ बोले लेकिन पारूमल ने पाँच दस दे मारे। सब गुड़ गोबर कर दिया गहनों का। काका डाँटने लगाः

"हमारा ऑर्डर का माल थाष इज्जत का सवाल है। पिछले 150 साल की पेढ़ी का नाम खराब कर दिया। तूने सब बरबाद कर दिया। आठ दिन से नौकरी छोड़कर बाबा बन कर बैठा है और हमारे ऊपर मर्ज होकर बैठा है।"

आज तक तो बोलते थे पारूमल..... पारूमल.... लेकिन आठ दिन से नौकरी गई तो पारूमल तुम्हें बोझीला लगता है ?

संसार का सम्बन्ध यही है। तुम लोग आजमाना मत लेकिन भीतर से समझना जरूर। ॐ....ॐ.....ॐ....

सुर नर मुनि सब यह रीति।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति।।

स्त्री में रूप लावण्य है, सौन्दर्य है तब तक वह पति के लिए प्यारी है। पति में शक्ति है और कमाता है तब तक स्त्री के लिए पति प्यारा है। पुत्र में भावि सुख की आकांक्षा है इसलिए पुत्र प्यारा लगता है। पिता पालता-पोसता है, बाद में पिता की संपत्ति मिलेगी इसलिए पिता प्यारा लगता है। ये सब रिश्ते-नाते एक दूसरे को शोषते हैं। जिसको परमात्मा प्यारा लगता है वह सचमुच प्यारा हो जाता है, बाकी के लोग ठोकर मारकर खाते हैं। ॐ.....ॐ......ॐ......

हमाम दस्ते के थोड़े धक्के लगे तो सारे सम्बन्ध गिर पड़े। लोग कुछ का कुछ बोलने लगे। पारूमल तो भीतर से जगे हुए थे। सँभलकर देख लेते थे कि किसका कितना प्रेम है। सारा प्रेम पूरा हो गया। संसार के प्रेम को आजमाकर देखो तो आपको लगेगा कि हमारे जैसा कोई बेवकूफ नहीं। आपका सूर्य जब तक चमकता होगा तब तक सब आपके इर्द गिर्द होंगे। आप चुनाव में जीत गये और किसी पोस्ट पर पहुँच गये तो पराये लोग भी अपने हो जायेंगे। लेकिन चुनाव या नौकरी से इधर-उधर हुए तो देख लो संसारियों के रंग !

इसीलिए परमात्मा पर भरोसा रखने के बजाय जो संसार के सम्बन्धों पर भरोसा रखता है वह आखिर में बुरी तरह ठुकराया जाता है। अपने अन्तर्यामी प्रभु के ऊपर भरोसा रखना चाहिए, उस प्रभु की खोज करनी चाहिए। वह खोज छोड़कर यदि संसार के सुखों की खोज की तो तुम्हें अन्त में अवश्य पछताना पड़ेगा।

पाँच दस हमाम दस्ते लगाकर पारूमल ने तो सारे सम्बन्धों का पोल खोल दिया। अब आसाराम यह आशा करते हैं कि तुम बिना हमाम दस्ता लगाये सम्बन्धों का पोल जान लो ऐसे दिन कब आयेंगे ?

पत्नी कहती हैं- "मैं आपकी हूँ" बच्चे कहते हैं- "हमारे पप्पा।" नौकर कहते हैं- "साहब.....।" लेकिन कब तक ?

साहेब तेरी साहेबी घट घट रही समाय।
जैसी मेंहदी बीच में लाली रही छुपाय।।

मेंहदी हरी दिखती है लेकिन उसमें लाली छुपी है। ऐसे यह देह नश्वर है लेकिन उसमें शाश्वत चेतना छपी है। उस चेतना का जो दीदार कर लेता है उसने सब कुछ कर लिया। उसका जो अनादर कर देता है, मानो उसने अपने जीवन का अनादर कर लिया। अपने आपका वह दुश्मन हो गया।

धन कमा-कमाकर कितना कमाओगे ? लाख.... दो लाख....दस लाख.... पचास लाख..... करोड़.... दस करोड़..... पचास करोड़.... हजार करोड़.... लेकिन आखिर क्या ? खाना दो रोटी और उसी शरीर को श्मशान में जला देना है। कबीर जी ने ठीक कहा हैः

सांई ते इतना मांगू जो नव कोटि सुख समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधू भी भूखा न जाय।।

इतना धन है तो काफी है। बाकी का समय बचाकर बन्दगी कर ली जाय। एकान्त में कभी रहा जाय। कभी अनुष्ठान किया जाय।

गुरूपूनम से चतुर्मास का प्रारम्भ होता है। साधना का कोष भरने के लिय चार महीने हैं। आठ महीने तो तिजोरी का कोष भरने और सँभालने के हैं और चतुर्मास के चार महीने योग साधना, भक्ति, ज्ञान को बढ़ाने के लिए हैं। आठ महीने वाल ऐहिक कोष यहीं पड़ा रह जायगा लेकिन यह चार महीनों वाला आध्यात्मिक कोष तुम्हें भी निहाल कर देगा और तुम्हारे द्वारा कइयों को निहाल करेगा फिर भी खूटेगा नहीं। ऐसा कोष भरने का प्रारंभिक दिन है गुरूपूर्णिमा।

पारूमल ने देखा कि सब ऐसा ही है। एक बूढ़े ने कहाः "तेरा दिमाग तो खराब नहीं हुआ है ! ऐसा क्यों किया ?"

"खराब दिमागवालों के बीच में जब किसी का दिमाग खुलता है तो उनको लगता है कि इसका दिमाग खराब हो गया। यह दुनियाँ पागलखाना है। पागलों के बीच में कोई अक्लवाला मिलता है तो सब पागल उसे पागल ही कहते हैं।"

"मतलब क्या ? तू अक्लवाला है तो ये जेवर तोड़े क्यों ?"

"मैंने तोड़े नहीं। मैंने कुछ किया नहीं। मैंने होने दिया। वह विधाता की मर्जी थी। और जेवर तो वैसे के वैसे पड़े हैं।"

जाकर देखा तो हमाम दस्ते में जो चूर - चूर हुए जेवर थे वे हैं नहीं और सब के सब शोकेस में यथावत् पड़े हैं। नाहक का टोला हो गया और लड़ रहे हैं।

"पारूमल ! ये कैसे बनाये तुमने ?"

"हमने तो नहीं बनाया लेकिन एक पानी की बूँद से जो राजा, महाराजा, सम्राट बना सकता है वह टूटे हुए गहनों को जैसे थे वैसे कर दे इसमें क्या आश्चर्य है ? ईश्वर ने ही मेरे मोह को तोड़ने के लिए मेरे द्वारा करवाया। मैं अगर करने बैठता, जेवर कूटने और फिर ठीक करने बैठता तो मैं क्या मेरा बाप भी नहीं कर सकता। लेकिन मैं अनजाने में हट गया तो उसी की लीला हो गयी।"

फिर तो लोग वाह-वाह करने लगे कि अरे भाई ! तू तो बड़ा अच्छा आदमी है..... यह है.... वह है....।

"जान लिया.... जान लिया। अपने ही पास रखो ये खुशामद भरे वचन। " कहकर पारूमल चले गये एकान्त में।

एकान्त में आदमी की शक्तियों का विकास होता है। एकान्त में खतरा भी होता है। अगर साधक में प्रमाद आलस्य आ जाय, वह सो जाये, कुविचार आ जाये। जिस साधक ने सदगुरू से मंत्र प्राप्त किया है उसको एकान्त में कुविचार नहीं घेरेगा।

पारूमल चले गये हिमालय की झाड़ियों में। काफी दिनों के बाद उनकी धारणा-ध्यान-समाधि में पुष्टि होती गई। जीवत्व हटता गया और शिवत्व प्रकट होता गया। प्राणी मात्र में समभाव, असंगता, सहजता, सरलता, निर्मलता, विषयलोलुप-रहितता, निश्चिंतता और सहज स्वभाव में परमात्म दृष्टि इत्यादि सदगुणों का सामर्थ्य, सत्ता का सामर्थ्य इनके जीवन में आ गया। रूपयों का सामर्थ्य, सत्ता का सामर्थ्य गिने-गिनाये स्थानों में प्रभाव डालता है लेकिन साधना का सामर्थ्य जिसके पास है वह कहीं भी चला जाये, वह सामर्थ्य काम आता है।

वकील का सामर्थ्य वकालत की जगह पर, डाक्टर का सामर्थ्य प्रेक्टिस की जगह पर, राजा का सामर्थ्य राजगद्दी पर लेकिन साधना का सामर्थ्य सब जगह काम आता है। जिसके पास साधना का खजाना है वह इधर जाय, उधर जाय, परदेश जाय, अतल में जाए, वितल में जाय, रसातल जाय, पाताल जाय, भुःलोक जाय, भुवःलोक जाय, महःलोक जाय, तप लोक जाय, जनलोक जाय, जनलोक जाय, स्वर्गलोक जाय, उसकी साधना का प्रभाव सब जगह उसका बेड़ा पार कर देगा।

तुम यह संकल्प करो कि ये जो चतुर्मास शुरू हो रहे हैं उसमें हम साधना का खजाना बनायेंगे। कुछ अपनी पूँजी बनायेंगे। यहाँ के रूपये तुम्हारी पूँजी नहीं है, तुम्हारे शरीर की पूँजी

है। लेकिन साधना तुम्हारी पूँजी होगी। कोई अनुष्ठान का नियम ले लो, चतुर्मास में एक टाइम भोजन और एकांतवास का नियम ले लो। योगवाशिष्ठ महारामायण के पारायण करने का नियम ले लो अथवा 'ईश्वर की ओर' पुस्तक कुछ दफा पढ़ने या उसकी केसेट सुनने का नियम ले लो। इस प्रकार अपने सामर्थ्य के अनुसार कुछ न कुछ साधन भजन का नियम ले लेना।

जो घड़ियाँ बीत गईं वे बीत गईं, वापस नहीं आयेंगी। जो साधन भजन कर लिया सो कर लिया, वही तुम्हारा असली धन है। रूपया-पैसा, पद-सत्ता, पत्नी परिवार वास्तव में तुम्हारे नहीं हैं। साधन भजन करके, अपनी बुद्धि को शुद्ध करके जितनी आध्यात्मिक प्रगति कर ली वही तुम्हारा धन है। तुम्हारे इस खजाने को चोर लूट नहीं सकते, डाकू डाका नहीं डाल सकते, सरकार उस पर टैक्स नहीं लगा सकती, मौत छीन नहीं सकती। मौत आती है, सब छीन लेती है। तुम्हारा शरीर भी छीना जाता है लेकिन तुम्हारे साधन भजन की तपस्या, मौत के बाप की ताकत नहीं जो छीन सके। ऐसे अखूट धन का कोष भरने के दिन चतुर्मास के दिन हैं।

मैत्री, क्षमा, मुदिता, सहजता, स्वाभाविकता, प्राणीमात्र में मित्रभाव, जीवमात्र के कल्याण की भावना, ये सारे सदगुणों के खजाने होने लगे। बड़े छोटे सब इकट्ठे हुए। संत का स्वभाव है देना। आश्रम आदि तो कुछ था नहीं। एक दुकान पर खड़े रहे और दुकान से मुट्ठियाँ भरकर रेवड़ियाँ बच्चों में बाँटी। बच्चों के झुण्ड के झुण्ड हो गये। हररोज ऐसा सिलसिला जारी रहा। जिस दुकान पर खड़े रहते वहीं से प्रसाद उठाते। दुकानदार लोग भी अपना धनभाग्य समझकर प्रसाद तैयार रखने लगे।

समाज में हमेशा दैवी और आसुरी प्रकृति के लोग हुआ करते हैं। दैवी संपदा के सात्त्विक लोग कम संख्या में होते हैं और आसुरी संपदा के लोगों की संख्या ज्यादा होती है। लेकिन अन्त में विजय तो दैवी संपदावाले लोगों की ही होती है। पांडव पाँच हैं, कौरव सौ है, प्रभाव कौरवों का होता है, पाँडव पिछड़े से लगते हैं लेकिन अन्त में विजय पांडवों की होती है।

ऐसे ही आपके जीवन में विघ्न बाधाएँ आती हैं। मुझे पता है, मैं जानता हूँ।

"साँई ! हमने तो आपसे कहा नहीं। आपको कैसे पता चला ?"

ऐसा कोई भगवान का प्यारा साधक है ही नहीं जिसके जीवन में विघ्न-बाधाएँ नहीं हैं। .....और जिसके जीवन में विघ्न-बाधाएँ नहीं है तो वह साधक किस बात का ? विघ्न-बाधाएँ होना तुम्हारे साधकपने की निशानी है, संसार से निराले मार्ग पर जाने वालों की निशानी है। सोते हुए जिन्दगी बिताने वालों के जीवन से आपका मेल नहीं होगा। ऐसा नहीं कि आप उनसे मेल नहीं करते लेकिन वे लोग आपको देखकर चिढ़ेंगे। हमारे एकमात्र भाई थे। बड़ा प्यार करते थे लेकिन जब हमको ईश्वर का रंग लगा तो वे चिढ़कर बोलतेः "सुधर जा..... सुधर जा.... सुधर जा.....।" लेकिन अब कबीरो बिगड़ गयो रे.....

सुनो मेरे भाइयो ! सुनो मेरे मितवा
कबीरो बिगड़ गयो रे....

दही संग दूध बिगड़यो मक्खन रूप भयो रे
कबीरो बिगड़ गयो रे....
पारस संग भाई ! लोहा बिगड़यो
कंचन रूप भयो रे...... कबीरो बिगड़ गयो रे......
संतन संग दास कबीरो बिगड़यो
संत कबीर भयो रे.... कबीरो बिगड़ गयो रे....

आप अगर अकेले किसी जीवन्मुक्त महापुरूष के पास जाते हैं तो जीवन्मुक्त महापुरूष की मुलाकात व्यर्थ नहीं जायेगी। उनकी नूरानी निगाह, वाणी और वातावरण आपके दिल में परिवर्तन कर देगा। आपको लग जायेगा भक्ति का रंग। जब आपको राम का रस मिल गया तो पहले पत्नी के साथ कामरस में सहयोग देते थे उस स्वभाव में परिवर्तन आ जायगा। पत्नी कहेगी कि आप बिगड़ गये। वह रोना चालू कर देगी। वह सोचेगी कि आप इतने दिन अच्छे थे लेकिन बाबा के पास जाकर बिगड़ गये। पत्नी अगर ईश्वर की राह पर चलने लगी तो पति भी यही सोचेगा। अगर पति और पत्नी दोनों चल पड़े साधना के मार्ग पर तो जो लोग आपके ऊपर हुक्म चलाकर, आपको भय अथवा प्रलोभन देकर आपको उल्लू बना रहे थे उन लोगों का प्रभाव आपके ऊपर नहीं पड़ेगा। परिवारवाले कहेंगे कि ये पति-पत्नी दोनों बिगड़ गये हैं। अगर पूरा कुटुम्ब सत्संग में आता है तो पड़ोसी जरूर बड़बड़ायेंगे। यह बिल्कुल अनुभव की बात है। एक दो का अनुभव नहीं, मेरे हजारों हजारों साधकों का अनुभव है।

अगर ये पड़ोसी, नाते रिश्तेदार भी भक्त होंगे तो वे भी मुड़ेंगे। जैसी जिनकी बुद्धि होगी वैसा प्रत्याघात होगा। तामसी प्रकृति के लोग होंगे तो ईर्ष्या करके आपको गिराने की कोशिश करेंगे। लेकिन जो गिरकर लौट जाये वह साधक कैसा ? गिरना अपराध तो है लेकिन गिरकर वापस न उठना यह महा अपराध है।

पारूमल दुकानों से प्रसाद उठा-उठाकर बच्चों को बाँटते। कुछ लोग तो कहते कि आज हमार भाग्य खुल गये जो ऐसे संत के हाथ से हमारा प्रसाद बँटा। मरकर तो सब छोड़ना ही है फिर भी जीते जी छूटता नहीं था। बाबाजी ने जीते जी छुड़वा दिया। अच्छा हुआ।

कुछ लोग संत की इन चेष्टाओं से भीतर ही भीतर क्रुद्ध होते थे और अफवाहें फैलाते थे। अफवाहों का शिकार हमेशा तामसी या राजसी लोग बनते हैं बेचारे। जो मजबूत सात्विक साधक है वह सावधान रहता है। अफवाह का शिकार नहीं बनता। कदाचित सुन ले तो भी ज्यादा देर तक प्रभावित नहीं रहेगा।

धर्मदास नाम का रेवड़ी का कोई व्यापारी था। बच्चे पारूमल को घेरा डालकर वहाँ से आनन्द कल्लोल करते जा रहे थे तो वही दुकान सामने आयी। पारूमल ने दो चार मुट्ठियाँ रेवड़ी की भरकर बच्चों में बाँटी। धर्मदास ने तो गन्दी अफवाह सुनी थी। जानता था कि पारूमल पहले सिपाही थे। वह बोल पड़ाः

"सपाटे में से साधू बना है तो अभी भी सपाटा ही रहा। सिपाही था तब लोगों को चूसता होगा। अभी भी लोगों का माल उड़ाता है। कमाकर उड़ा तो पता चले।"

पारूमल ने कहाः "ऐ धर्मो ! न जिया न जीने दिया....... न खाया न खाने दिया। धिक्कार है तुझे।"

संत की फटकार लगने से धर्मदास का ओज कम हो गया। दिन को चैन नही, रात को आराम नहीं। भक्तों ने भी थू.....थू.... किया तो उसका मनोबल और कम हो गया। दो चार दिन में ही वह पागल होकर मर गया। इस घटना से गाँव में बात फैल गई कि पारूमल सिद्ध पुरूष है। फिर तो दुकानदारों पर प्रभाव पड़ने लगा। उन लोगों ने अपने बेटों से, नौकरों से कह दिया कि हमारी गैरहाजिरी में भी पारूमल यहाँ से गुजरे तो दुकान से उतर कर पैर छूना और प्रसाद का टोकरा लेकर तैयार रहना।

चमत्कार के बिना नमस्कार नहीं। कलियुग का आदमी बाहर के चमत्कार देखता है, ज्ञान पर उसकी नजर नहीं रहती।

फिर तो बाजार में खूब वाह वाह होने लगी। पारूमल बाजार में आते तो दुकानदार सब अहोभाव से नतमस्तक खड़े रहते।

मुसलमानों ने देखा कि पारूमल का बड़ा प्रभाव है। ये अगर मुसलमान बन जायें तो हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में सुविधा हो जायेगी।

अरे ! सब परमात्मा के हैं। सबका रास्ता ईश्वर-प्राप्ति का है। किसी का धर्मपरिवर्तन करने का लक्ष्य सही नहीं है। हिन्दू में से मुसलमान बनाने से खुदा रीझता है ऐसी बात नहीं है। यह तो बेवकूफों का प्रचार है।

ऐसे प्रचार के शिकार बने हुए लोगों ने षडयंत्र रचा। पारूमल को समझाया लेकिन देखा कि ये मानेंगे नहीं। उन लोगों में एक नवाब भी था। उसकी सत्ता के बल से मुल्ला-मौलवियों ने पारूमल को उठवाकर एक मस्जिद में पहुँचा दिया। सख्त बन्दोबस्त। सोचा था कि कुछ भी हो, एक बार सुन्नत करा दिया फिर क्या ?

नाई को बुलाया गया। वह अपने औजार तैयार करने लगा। पारूमल ने देखा कि यह षडयंत्र है। ये लोग कई हैं, मैं अकेला हूँ। लेकिन अकेला होते हुए भी जिसने परमात्मा में प्रतिष्ठा पा ली है उसके द्वारा आखिरी क्षण में भी परमात्मा क्या पता क्या करवा ले ! पारूमल बैठे रहे शान्त.....। तेरी मर्जी पूर्ण हो। उनका मन शान्त हो गया। उधर नाई उस्तुरा घिस रहा था और पारूमल को देख रहा था। फिर यकायक पारूमल ने झटके के साथ नाई पर नजर डाली। तुरन्त नाई के नाभि केन्द्र पर झटका लगा और उसकी जननेन्द्रिय गायब हो गई। नाई को लगा कि मुझे कुछ हो गया। बाथरूम में जाकर देखा तो मामला चौपट..... ! न वह पुरूषों में रहा न स्त्रियों में। तोबाह..... तोबाह........... तोबाह........!

नाई न जाकर सब मुल्ला-मौलवियों को, रईसों को बताया कि पारूमल ने ऐसा किया तो मुझे ऐसा हो गया। कहकर वह रोने-चीखने लगा। दो चार लोगों ने नाई को एक ओर ले जाकर जाँच की तो बिल्कुल नया दृश्य पाया। मुँह में उँगली डालकर तोबाह.... तोबाह करते वापस आये। भीतर से काँपने लगे कि पारूमल हमको भी निगाह मात्र से ऐसे ही कर देंगे तो क्या होगा ?

जोगी, अग्नि और राजा से वैर करना ठीक नहीं है। अब कुछ न कुछ करके जोगी को रिझा लें। गले में कपड़ा डालकर उनके पैर पकड़े और बोलेः

"आप पारूमल नहीं, पारूशाह हैं। हमारे भी गुरू हैं, मालिक हैं। आपसे हमने जो बदतमीजी की, गुस्ताखी की, माफ कर देना।"

संत का हृदय तो संत का ही होता है। तब से वे सिपाही पारूमल नहीं, साँई पारूशाह हो गये।

बात लगी कहाँ से ? साहब के आदमी ने आकर बुलाया कि, 'चलो, साहब बुलाते हैं।' पारूमल को, मानो पराधीनता का कोड़ा लगा और उन्होंने एक झटके से उस बन्धन को तोड़ फेंका। तीव्र साधना करके परम स्वाधीनता प्राप्त कर ली।

ऐसे ही कोई कथा, वार्ता सुनकर जीवन बदल जाय तो समझो कि वह कोई पुण्यात्मा है।

आयुष्य का तेल खूट जाता है तो जीवन की बाती बुझ जाती है। एक बार मनुष्य जीवन की बाती बुझ गई तो फिर वह बुद्धि नहीं मिलती, ब्रह्म को जताने वाली बुद्धि फिर पैदा नहीं होती। फिर भैंस हो जाओ, रीछ हो जाओ, कुछ भी हो जाओ लेकिन वह बुद्धि नहीं मिलती जो हृदय में छुपे हुए हृदय के स्वामी को जान ले। मनुष्य की बुद्धि ही यह जान सकती है। मनुष्य जीवन का आयुष्यरूपी तेल खूट जाय, बाती बुझ जाय उसके पहले अपना रास्ता तय कर लेना चाहिए। अन्यथा प्राणी अन्त में पश्चाताप करता-करता मरता है।

मरकर तो सभी ने छोड़ा और फिर भी मरते ही रहे लेकिन जिन्होंने जीते जी सब छोड़कर थोड़ा समय बन्दगी में गुजारा, थोड़ा समय अपने आपको जानने में गुजारा उनको फिर कभी मरना नहीं पड़ा। वे अमर परमात्मा में लीन हो गये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

साध्य को पाये बिना.......?

जो खिलाड़ी खेल को कठिन मानता है वह खिलाड़ी नहीं अनाड़ी है। जो कारीगर कहता है कि यह काम कठिन है, वह कारीगर नहीं अनाड़ी है। जो कहता है कि आत्मज्ञान पाना कठिन है, आत्म विश्रान्ति पाना कठिन है, आत्मा में आराम पाना कठिन है, परमात्मा का ध्यान करना कठिन है, प्रभु का अमृत पीना कठिन है, वह प्रभु के मार्ग में अनाड़ी है।

राजा खटवांग ने एक मुहूर्त में प्रभु का साक्षात्कार कर लिया। राजा जनक ने घोड़े की रकाब में पैर डालते डालते प्रभु का अनुभव कर लिया। शुकदेवजी महाराज ने इक्कीस दिन में आत्म-साक्षात्कार कर लिया। राजा परीक्षित को कथा-श्रवण करते-करते पाँच दिन हुए, शुकदेव जी की नूरानी निगाह पड़ी तो परीक्षित को तसल्ली मिल गयी। सातवें दिन पूर्णता प्राप्त हो गई।

अधिकारी जीव को पाँच, सात, दस दिन में, महीने दो महीने में, साल दो साल में, दस साल में भी, अरे पचास साल तो क्या पचास जिन्दगियाँ दाँव पर लगाने के बाद भी अनन्त ब्रह्मण्ड के नायक प्रभु का अनुभव होता है तो सौदा सस्ता है।

तू लगा रह। थक मत। लगा रह.... लगा रह.....। माप-तौल मत कर। पीछे कितना अन्तर काट कर आया इसकी चिन्ता मत कर। आगे कितना बाकी है यह देख ले। जितना चल लिया वह तेरा हो गया।

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

वशिष्ठजी कहते हैं- "हे रामजी ! सन्ध्या का समय हुआ है।"

सभा में सब परस्पर नमस्कार करके उठने लगते हैं तो रामजी कहते हैं- "भगवन् ! तुम्हारे शब्द कानों के भूषण हैं। सुनते-सुनते कान अघाते नहीं। हालाँकि ये बाते मैं पहले सुन चुका हूँ लेकिन फिर से आप कहते हैं...... बड़ी प्यारी लगती हैं ये बातें।"

तुलसीदास जी कहते हैं-

श्रवण जाँ के समुद्र समाना।
हरिकथा सुनहिं नाना......।।

जिसके कान समुद्र के समान हैं...।

सब नदियाँ जाकर समुद्र में गिरती हैं लेकिन समुद्र इन्कार नहीं करता। ऐसे ही जो श्रोता हरिरस की चर्चा सुनते सुनते थकता नही, ऊबता नहीं तो समझ लो उसके श्रवण समुद्र के समान हैं।

यदि सत्संग नहीं सुनेगा तो कुसंग में पड़ेगा। यदि सत्कृत्य नहीं करेगा तो दुष्कृत्य करेगा। बन्दगी में, तपस्या में समय नहीं जायेगा तो ऐसे ही हाहा.... हूहू... में समय जायेगा। सत्संग में पाँच घण्टे बिताये तो ये पाँच घण्टे तपस्या में गिने जायेंगे। ज्ञान मिला वह मुनाफे में, भक्ति मिली वह मुनाफे में। नहीं तो पाँच घण्टे वैसे ही बीत जाते।

कबीरा दर्शन संत के साहिब आवे याद।
लेखे में वो ही घड़ी बाकी के दिन बाद।।

जो घड़ियाँ हरिचर्चा में, हरिध्यान में बीतीं वे सार्थक हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कोई भी कार्य उत्साह से किया जाय तो समय व शक्ति उसमें कम लगने पर भी वह कार्य बढ़िया सुन्दर बन जाता है। यदि कार्य करने में उत्साह नहीं है तो समय भी ज्यादा लगता है और वह इतना फलित भी नहीं होता है।

बड़े में बड़ा कार्य है भगवत्प्राप्ति। जिसने भगवत्प्राप्ति नहीं की उसने व्यर्थ जीवन गँवा दिया। भगवत्प्राप्ति करने में उत्साह चाहिए। उत्साह होने पर साधना में नियमितता आने लगती है। साधना में नियमितता आने के कारण साधना में रस पैदा होता है। वह रस साध्य तक पहुँचा देता है। अगर साधन-भजन में रस नहीं है, आहार व्यवहार में नियमितता नहीं है तो अच्छे से अच्छा साधक भी गिर जाता है।

सदगुरू का एक शिष्य उपदेश सुनकर एकान्त में गया। थोड़ा साधन-भजन किया। उसकी धारणाशक्ति सिद्ध हो गई। एकाग्रता हुई। एकाग्रता के बल से आत्म-साक्षात्कार करना चाहिए वह तो किया नहीं। एकाग्रता से छोटा-मोटा कुछ प्रभाव आया तो वह अपने को परमहंस मानने लग गया।

ब्रह्मवेत्ता महापुरूष ने जब तक अनुभव नहीं करवाया तब तक अपने मन से ही प्रमाणपत्र लेकर बैठ जाना यह आपको धोखा देना है। आखिरी मुहर तो ब्रह्मवेत्ता महापुरूषों की होती है।

जब तक साक्षात्कार नहीं होता है तब तक उच्च कोटि के महात्मा नहीं कहेंगे कि तुझको साक्षात्कार हो गया है। साक्षात्कार का मतलब है राग, द्वेष और अभिनिवेश निवृत्त हो जाना। ऐसा नहीं कि ललाट में बिन्दी देखी, प्रकाश देखा और चित्त में काम, क्रोध, लोभादि शत्रु मौजूद हैं, राग-द्वेष मौजूद हैं। जरा से प्रकाश की बिन्दी देखी और साक्षात्कार हो गया ? बिन्दी देखना यह दृश्य है। उसी को प्रभुदर्शन या साक्षात्कार मानने वाले लोग अपने आपको ठगते हैं।

पूरा संसार और मृत्यु का भय भी सत्य न दिखे। सारा संसार स्वप्न की नाँई भासे। स्वप्न में सुख देखा हो या दुःख देखा हो, जाग्रत में उसका कोई मूल्य नहीं। स्वप्न में तुमने लाखों रूपयों का दान किया तो जाग्रत में उस दान का अहंकार नहीं होता। स्वप्न में तुम्हारी जेब कट गई या करोड़ों की संपत्ति नष्ट हो गयी तो आँख खुलने पर उसका शोक नहीं होता।

ऐसे ही यह संसार स्वप्न होता है। बोध हो जायगा तो हर्ष शोक के प्रसंग में सुख-दुःख भीतर से हिलायेंगे नहीं। जब तक ऐसा बोध हुआ नहीं, सौ प्रतिशत यात्रा नहीं हुई तब तक साधना में शिथिलत कर दे या अपने को ज्ञानी मान ले यह बड़ी भूल है। बिन्दी दृश्य होता है भैया ! रूप प्रत्याहार , दिखती है। योगमार्ग में यह बहुत छोटी बात है। आत्म-साक्षात्कार का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

कोई कहता है पृथ्वी बड़ी है, कोई कहता है आकाश बड़ा है, कोई कहता है स्त्री और पुरूष बड़े हैं लेकिन गोरखनाथ कहते हैं कि भूल बड़ी है जो आदमी को चौरासी लाख योनियों में भटकाती है। अपने स्वरूप के बारे में जो भूल है वह बड़े में बड़ी है। वही सब भ्रम दिखाती है।

साधना में थोड़ा अनुभव हो जाय उसी में तुष्ट हो जाना यह भी भूल है। इस तुष्टि के कारण वह साधक बेचारा उलझ गया। उलझ गया तो वह अपने को सिद्ध मानने लग गया। थोड़ी सेवा आदि की थी, थोड़ा भजन-वजन किया था। थोड़े पुण्य जमा हुए तो वह कपड़े लत्ते निकाल कर परमहंस का वेश बनाकर बैठ गया। लोग बापजी बापजी करने लगे। लोग खिलावें तो खावे, नहीं तो पड़ा रहे। कीर्ति फैल गई।

किसी राजा ने देखा कि ज्ञानी है, परमहंस है। बड़े आदर से महल में ले आये। सेवा की। पहले छोटी मोटी कौपीन पहनते थे फिर रेशमी चद्दरें पहनने लगे। कीर्ति में फँसे। राज्य का अन्न खाने लगे। राजा के यहाँ रहने लगे। राजसी अन्न.... बकरे कटते हैं उसमें से टैक्स आता है, गौ कटती है उसमें से टैक्स आता है, श्मशान का भी टैक्स आता है। सब राज्य का अन्न ! बुद्धि रजोगुणी हो गई, साधना नष्ट हो गई।

राजा को एक ही लड़की थी। और कोई संतति नहीं थी। राजा ने सेवा पूजा की। राजा के कुछ पुण्य रहे होंगे, उसको बेटा हुआ। राजा इस साधक को भगवान मानने लगा। राजा के निवास में रहते-रहते बुद्धि एकदम नीची हो गई। राजा की रानी भी सेवा करे, राजा की बेटी भी सेवा करे। उस युवती को देखते-देखते मन में विकार पैदा हुआ। एक दिन राजा को बुलाया और कहाः

"देख, यह लड़का तो पैदा हुआ मेरी कृपा से, लेकिन उसके ग्रह ऐसे हैं कि तुम्हारी लड़की जीवित रहेगी तो यह लड़का मर जायेगा।"

"बाप जी कोई उपाय बताओ।"

"उपाय यह है कि लड़की को सन्दूक में डालकर कृष्णार्पण कर दें तो लड़का जियेगा, नहीं तो मर जायेगा।"

राजा आ गया उसके षडयंत्र में। उसने लड़की को सन्दूक में डालने की बात वजीर से कहीं। वजीर कुछ सयाना था। सोचा कि राजमहल में रहते-रहते साधक की भावना चट हो गई है। तत्त्वज्ञान स्थित नहीं है। राजा उससे भरमा गया है।

वजीर ने सन्दूक मँगाया। लड़की को जाकर ठीक जगह रख दिया और जंगल से एक शेर पकड़वाकर सन्दूक में बन्द कर दिया। बजाते गाते सन्दूक को बाप के कहे अनुसार नदी में प्रवाहित कर दिया। साधक ने यह देखा और मन ही मन कहाः अपना काम बन गया। जंगल जाने के बहाने वह भागा, सोलह सिंगार की हुई युवती को सन्दूक में सुलाया था उसे लेने के लिए। दौड़ते दौड़ते दो मील का चक्कर काटकर आगे जाकर देखा तो सन्दूक आ रहा है। अपना मनोरथ पूरा होगा। सन्दूक पकड़कर खोला तो निकला शेर। फिर क्या हुआ होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं।

निगुरे का हाल भी निगुरा होता है। मनमुख कहाँ धोखा खा लेता है उसको पता नहीं चलता।

इस प्रकार की प्राचीन घटनाएँ हम लोगों को सावधान करती हैं कि जब तक पूरा तत्त्वज्ञान हजम नहीं हो जाय तब तक साधना से रूचि न हटायी जाय। इतनी कृपा करें। साधना में रूचि बनी रहेगी तो साधना में रस आयेगा। साधना का रस चालू रहेगा तो बाहर का रस आकर्षित नहीं करेगा। साधना का रस छोड़ दिया तो बाहर का रस फँसा देगा।

इसलिए साधना में नियमितता लानी चाहिए। यदि किसी कारणवश नियमितता न ला सकें तो भी साधना में प्रीति बनी रहनी चाहिए। साधना में प्रीति होगी तो साधना में रस आयेगा। साधना में रस आयेगा तो साध्य तक पहुँचा देगा।

हम जितना मूल्य संसार को देते हैं इतना मूल्य अगर ईश्वर को दें तो सचमुच फिर देर नहीं है, आप ईश्वर हैं ही। लेकिन जितना मूल्य ईश्वर को, परमात्मा को देना चाहिए उसका आधा मूल्य भी दे दें न, तो भी दुःख, कलह, परेशानी, जन्म-मृत्यु दूर हो जाय। हम मुक्त हो जायें। लेकिन हम परमात्मा के मूल्य को जानते नहीं। जगत का मूल्य, संसार का आकर्षण दिमाग में इतना भरा है कि दिन-रात उसी को सुनते हैं, उसी को देखते हैं, उसी की चर्चा करते हैं। हमारे हृदय में नाम रूप की सत्यता घुस गई है। नाम रूप की सत्यता ने लोगों के दिल की इतनी खाना खराबी कर दी है कि दिल में दिलबर छुपा है वह दिखता नहीं और जो मिथ्या है, स्वप्न जैसा है, बदलने वाला है, जिसमें कुछ सार नहीं फिर भी उससे दिल दिमाग को भर रखा है।

आपने डिप्टी कलेक्टर की कथा सुनी, शंकराचार्यजी की कथा सुनी, कालचक्र की बात सुनी। इस प्रकार आपको भी कोई बात लग जाय तो गाँठ बाँध लो। क्योंकि जीवन बड़ा मूल्यवान है। एक-एक दिन आयुष्य का नाश हो रहा है। एक-एक घण्टा आयुष्य का कम हो रहा है। एक एक मिनट आयुष्य की क्षीण हो रही है। उसमें सुख देखा तो स्वप्न हो गया, दुःख देखा तो भी स्वप्न हो गया, दुश्मन देखे तो भी स्वप्न हो गया।

ऐसे स्वप्न जैसे जीवन में लोग बेकार का तनाव खिंचाव करके अपनी शक्ति बरबाद कर देते हैं। जब दुःख आ जाय तो याद रखोः वह खबर देता है कि संसार का यही हाल है। जब सुख आ जाय तब समझना कि टिकने वाला नहीं। यह पक्का समझ लिया तो सुख जाते समय दुःख नहीं देगा। सूरज रोज ढलता है यह पता है इसलिए शाम को सूर्य ढल जाता है तो दुःख नहीं होत। लेकिन घर में लाइट का फ्यूज उड़ जाता है तो हाय हाय ! आकाश में सब फयूज़ों का बाप ऐसा सूर्य डूब जाता है तो हाय हाय नहीं होती। कभी सूरज ढला तो दुःख होता है कि हाय हाय ! अन्धेरा हो गया ? नहीं, यह तो रोज होता है अन्धेरा। घर का छोटा-सा दीया बुझ जाता है तो दुःख होता है। क्योंकि यह मेरा दीया है इसकी ममता है।

कभी पति का दीया बुझ जायेगा कभी पत्नी का दीया बुझ जायगा, कभी पुत्र का दीया बुझ जायगा। दीये का तेल देखकर अन्दाज लगा सकते हैं कि दीया कब तक जलता रहेगा लेकिन अपने जीवनरूपी दीये का कोई भरोसा नहीं। अतः अभी से सावधान !

गाफिल क्यूँ सोचत नहीं वृथा जीवन विलाय।

तेल घटा बाती बुझी अन्त बहुत पछताय।।

जैसे कोई खिलाड़ी समझता है कि खेल खेलना कठिन है वह खिलाड़ी नहीं अनाड़ी है। ऐसे ही जो साधक समझता है कि आत्मज्ञान पाना कठिन है, मुक्त होना कठिन है वह साधक नहीं अनाड़ी है। उसमें सत्त्वगुण नहीं आया, गुरू के ज्ञान में दृढ़ता नहीं आयी। परमात्मा में प्रीति नहीं हुई। तड़प नहीं आयी, छटपटाहट नहीं आयी इसीलिए उसको कठिन लगता है।

चातक मीन पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाय।

साध्य को पाय बिना साधक क्यों रह जाय।।

मौत सिर पर खड़ी है और तू चद्दर ताने सोया है ! कब तक वह सोने देगी ? यह तो बहती सरिता है। जिसने पानी पी लिया सो पी लिया, नहा लिया सो नहा लिया। गंगा का बहता जल हमारा इन्तजार थोड़े ही करेगा ? समय हमारा इन्तजार थोड़े ही करेगा ? जितना पा लिया, जितना कर लिया, जितने संस्कार मजबूत हो गये परमात्मभाव के, उतनी ही तुम्हारी पूँजी है। और कोई पूँजी तुम्हारी नहीं है। ब्रह्मभाव के जो संस्कार हैं वे आपके हैं। आत्मविश्रान्ति के संस्कार आपके हैं, और कुछ आपका नहीं है।

जब भी मौका मिले, अकेले हो जाओ। शान्त हो जाओ। मौन का मजा लो। सत्संग की बात सुनकर मौन हो जाओ। आपस में ये बातें एक दूसरे से करो, संतों की प्रशंसा करो यह ठीक है लेकिन होकर सत्संग के विचारों में डूबे रहना, आत्म-चिन्तन में मस्त रहना अधिक अच्छा है। चित्त को शान्त करते जाओ, आत्म-शान्ति में खोते जाओ। सोना नहीं है, शान्त होना है। जितना जितना शान्ति का रस बढ़ेगा, जितनी जितनी निर्विचारिता बढ़ेगी उतने उतने आप महान् होते जाओगे। क्या पता दुबारा ऐसा शरीर मिले न मिले, दुबारा ऐसी बुद्धि मिले न मिले, दुबारा ऐसे प्यार से ऊपर उठाने वाले संतों की मुलाकात हो न हो !

देने वाला दिल खोल कर दे रहा है, तू अपना दामन क्यों सिकोड़ रहा है ? अपना दामन फैलाय जा.... फैलाय जा.... लेता जा। इन्कार क्यों करता है ?

साधन में रूचि रहे।

"रूचि नहीं रहती तो क्या करें ?"

साधन में नियमितता नहीं रख सकें तो क्या करें ?"

"भोजन में नियमितता है ?"

"नहीं।"

"नींद में नियमितता है ?"

"बाबा जी नहीं है।"

अच्छा ! भोजन करने में, नींद में नियमितता नहीं है फिर भी भोजन कर लेते हो। सो भी लेते हो। ऐसे ही अपना साधन भजन भी कर लो।

जो बहिर्मुख लोग हैं, जो रजो-तमोगुण के संस्कार के हैं उन लोगों का अन्न अनिवार्य हो तो ही खाओ, नहीं तो उससे बचो।

आहारशुद्धो सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

जीवन में ऐसी कोई आपत्तियों की घड़ियाँ आ जाये तो तुरन्त स्मृति आ जाय ज्ञान की। मानो यकायक सामने मौत आ जाय तो भीतर से तुम्हारी स्मृति होनी चाहिए कि मेरी मौत कभी नहीं होती।

वास्तव में तुम्हारा ऐसा स्वभाव है। तुम वास्तव में ऐसे हो। तुम्हारी मौत कभी नहीं होती नहीं लेकिन गलती ने तुम्हें ऐसा पकड़ रखा है कि बस मर.... गये। पानी नहीं मिला तो मर गये, छाछ नहीं मिली तो मर गये। हजार हजार बार 'मर गये.... मर गये....' कहते कहते भी जी रहे हो न ? ऐसे ही ये हजार हजार शरीर मरें लेकिन तुम तो सबके जीवनदाता हो। तुमको यह पता नहीं। सूर्य में तुम्हारा प्रकाश है, तारों में तुम्हारी टिमटिमाहट है, चाँद में तुम्हारी चमक है, योगियों के हृदय में तुम्हारी धड़कन है। लेकिन तुम्हें अपनी महिमा का पता नहीं।

अपनी महिमा को जानो। अपनी महिमा को पाओ। वाडा, पंथ, संप्रदाय ठीक है, सब अपनी अपनी जगह पर है लेकिन आखिरी सत्य और सार यह नहीं है। जो ब्रह्मवेत्ता हों, ज्ञानवान हों, वेद वेदान्त के तत्त्व-मत से वाकिफ हों और जिनको अपना आत्मा हस्तामलकवत् भासता हो, ऐसे महापुरूषों के अनुभव के वचन पकड़कर साधना में डट जाओ। फिर जब व्यवहार करो तब व्यवहार को भी देखो कि आखिर यह सब कब तक ?

बचपन खेल हो गया, जवानी खेल हो गई। सब स्वप्न.....। आखिर पति कब तक ? पत्नी कब तक ? रूपये कब तक ? सत्ता कब तक? फूलों की शय्या कब तक और पलंग का आराम कब तक ?

जिसमें पुरूषार्थ करना है वह ईश्वर प्राप्ति की बात रख दी प्रारब्ध पर और जो प्रारब्ध के आधीन है उसमें पुरूषार्थ करने लग गये हैं। आँख की दवा पेट में और पेट की दवा आँख में।

एक बीमार आदमी था। उसकी आँखों में कुछ जलन थी। वह वैद्यराज के पास गया। वैद्यराज ने आँखों के लिए लोशन आदि दिया और पेट के लिए पुड़िया दी। उस बीमार ने क्या किया कि आँख की दवा पी गया और पेट की दवा आँख में डाल दी। आँख हो गई टमाटर जैसी लाल और पेट फूल कर हो गया तरबूज।

यह उस मरीज की कहानी नहीं है, हम लोगों की है। चारों तरफ देखो तो यही हाल है। ज्ञान की आँख भी ठीक से काम नहीं देती है और जीवन के सुख-दुःख को पचाने की जठराग्नि भी नष्ट हो गई है। यह हम लोगों की ही तो घटना है।

अब कृपानाथ ! कृपा करो अपने ऊपर। जो आँख में डालने की दवा है उसको आँख में डालो और जो खाने की दवा है उसको खाओ। जिस निगाह से संसार को देखना चाहिए, उस निगाह से संसार को देखो और जिस निगाह से, जिस भाव से प्रभु प्राप्ति करनी है उस निगाह को

प्रभु के तरफ लगाओ। बस, तुम्हारा बेड़ा पार हो जायगा। तुम्हारा गुरूपूर्णिमा का पर्व पूर्ण रूपेण फल जायगा।

गुरूपूर्णिमा का उद्देश्य यह होता था कि सालभर में एक बार बिखरे हुए गुरूभाई एकत्र हों। कुछ नया मार्गदर्शन, कुछ नया उत्साह लेकर अपने लक्ष्य की ओर तीव्रता से गति करें। चतुर्मास का प्रारंभ करके आध्यात्मिक खजाना कमाने लगें। कुछ नियम, कुछ संकेत, गुरूओं की कुछ दुआ पायें और कुछ अपनी कृतज्ञता व्यक्त करें। इसीलिए गुरूपूर्णिमा के पर्व का आयोजन किया गया है। कान में फूँक मारकर दक्षिणा ले लेने का यह पर्व नहीं है। लेकिन शोक, ताप, संताप से तप्त जीवों की तपन लेकर उनके हृदय में परमात्मा की पवित्र शीतलता भरकर जीव को जगाने का यह पर्व है।

शिष्य सोचता है कि जिन ऋषियों, महापुरूषों के द्वारा ऐसा मिलता है तो उनके लिए हम क्या करें ? हम कृतघ्न न बनें, गुणचोर न बनें इसलिए कुछ न कुछ सेवा करें। शिष्य कुछ सेवा खोजते हैं और गुरू सोचते हैं कि शिष्यों का तन, मन, धन, जीवन सार्थक हो जाये।

गंगा में नहाते हुए गुरूजी ने दूर खड़े शिष्य से पानी माँगा। शिष्य लोटा लाया, माँजा और गंगा जी में वहाँ आया और वहीं से भरकर गुरू जी को दिया। साथ में नहाते दूसरे संतों ने प्रश्न कियाः "गंगाजल ही पीना था तो आप गंगाजी में ही खड़े थे। उस शिष्य से क्यों परिश्रम कराया।" बाबाजी ने कहाः "इसी बहाने उसको सेवा मिली। कृतज्ञता भरा व्यवहार करके अपना अन्तःकरण पवित्र बनाने का मैंने उसे मौका दिया।"

जो सत्शिष्य हैं वे गुरूओं के आदेशों का, उद्देश्यों का पालन करते हैं और सेवा का मौका ढूँढते हैं। जो स्वार्थी हैं वे नश्वर संसार की सेवा करने में रूचि रखते हैं लेकिन शाश्वत परमात्मा की दिशा में ले जाने वाले रास्ते पर चलने की रूचि कम रहती है। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने ईश्वर को कम मूल्य दिया है। परमात्मा को जो मूल्य देना चाहिए वह मूल्य उन्होंने जगत को दिया है। जगत का जो मूल्य है वह रख दिया परमात्मा के लिए। वे हैं भगत। जगत और परमात्मा, दोनों का मूल्य जिन्होंने जगत में लगा दिया वे हैं मूढ़। दोनों दृष्टियाँ जिन्होंने जगत में खर्च कर दी वे हैं पामर।

जो लोग संतों के पास आते हैं वे मूढ़ तो नहीं हैं, पामर तो नहीं हैं लेकिन संत जिन उच्च कोटि के जिज्ञासु की तलाश में हैं वे जल्दी मिलते नहीं। संत अपना खजाना बाँटते रहते हैं, वह खजाना खूटता नहीं लेकिन पूरे का पूरा खजाना लेनेवाला कोई मिल जाय ऐसी ताक में रहते हैं। ऐसा उत्कट जिज्ञासु, पूरा सत्शिष्य जल्दी मिलता नहीं। कवि काग अपनी व्यथा प्रगट करते हुए कहते हैं-

अमे नीसरणी बनीने दुनियामां ऊभा,
पण चड़नारा कोई न मळया रे जी।
अमे दादरो बनीने खीला खाधा,

पण तपस्यानां फल ना फळयां रे जी।
अंगड़ां कपाव्यां अमे, आग्युमां ओराणा,
अमे जन जननी थाळीए पीरसाणा,
पण जमनारा कोई ना मळया री जी।
माथड़ां कपाव्यां अमे, पाणीमां बफाणा
अमे अत्तर थईने, रूने पूमड़े नखाणा
पण सूंघनारा कोई ना मळया रे जी।
'काग' सरगापुरी छोड़ी अमे पतीतोने काजे
अमे हेमांळथी देहने पड़ता मेल्या
पण झीलनारा कोई न मळया रे जी।

ऐसा क्यों होता है ? संतों के पास सत्संग सुनने वाले तो हजारों की संख्या में लोग आते हैं लेकिन तत्त्वज्ञान की, आत्म-साक्षात्कार की, परमात्मा की आखिरी यात्रा सब लोग नहीं कर पाते। क्यों ? क्योंकि उनको ज्ञानवानों का संग कम है और संसार में उलझे हुए व्यक्तियों का संग ज्यादा है। खानपान की खबरदारी नहीं। जन्मजात ज्ञान के संस्कार नहीं। इसीलिए देरी होती है। अन्यथा परमात्मप्राप्ति में कुछ देरी नहीं है, कोई तकलीफ नहीं है। जो खिलाड़ी है उसके लिए खेल आसान है। जो अनाड़ी है उसके लिए खेल कठिन है।

जो कहते हैं कि परमात्मा-प्राप्ति कठिन है, आत्मज्ञान पाना कठिन है, अपने दिल में छुपे दिलबर का दीदार करना कठिन है, अपने आपकी मुलाकात करना कठिन हैं, आत्मदेव की मुलाकात करना कठिन है, वे खिलाड़ी नहीं अनाड़ी हैं। लेकिन जो कहते हैं आसान है, सरल है, परमात्मा तुमको मिल सकते हैं, ऐसे महापुरूषों का मिलना कठिन है।

ईश्वर मिलना कठिन नहीं है लेकिन हमारे हृदय में ईश्वर की सहजता, सरलता, आनन्द प्रगट करने वाले, हमारे दिल में ईश्वर प्राप्ति के लिए जिज्ञासा का तूफान भरने वाले, परमात्म-प्राप्ति कराने के लिए उत्सुक ऐसे महापुरूषों का मिलना कठिन है। जो कहते हैं कठिन नहीं है ऐसे संत महापुरूषों का मिलना कठिन है।

तुम लोग दूर से आये होगे..... थके होगे। अब प्रसाद पाओ, आराम करो....। लेकिन याद रखना, तुम कभी थकते नहीं। तुम्हारा शरीर थकता है। तुम थकान को भी देखते हो और थकान उतरने को भी देखते हो। मौत के समय भी अगर यह स्मृति आ जाय तो निहाल हो जाओगे। विद्यार्थी नहीं पढ़ता है, तो उसका कसूर है फिर भी मास्टर तो चाहता है कि वह पास हो जाय तो अच्छा है। किसी तुक्के से निकल जाये तो अच्छा है। ॐ......ॐ.......ॐ.....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रपत्तियोग

ईश्वर को सब कुछ सौंप दो। समर्पण की भावना में बल आने दो। बीज समर्पित होता है तो वृक्ष बन जाता है। तरंग समर्पित होती है तो सागर बन जाती है जीव समर्पित होता है तो शिव हो जाता है।

'मैं क्या खाऊँगा, कहाँ रहूँगा...' यह चिन्ता क्यों होती है ? क्योंकि मैं परिच्छिन्नता मौजूद है। मैं को व्यापक नहीं देखा। आदमी बेवफा, गद्दार या फाँकेबाज क्यों होता है ? क्योंकि मैं मौजूद है। पूरा समर्पण आया कि जीव शिव हुआ। जीव कहने को भी नहीं बचेगा कि समर्पण हुआ।

बीज कहता हैः "मैं समर्पित हूँ।"

कैसे ?

"मैंने अपना बीजपना छोड़ दिया।" यह कहने को अगर बाकी रहा तो क्या खाक समर्पण हुआ ? तरंग कहती है, "मैं समर्पित हुई हूँ। अब मुझे सागर बनाओ।" अरे मूर्ख ! तू समर्पित हो गई फिर क्या सागर बनना बाकी है ? अगर बाकी है तो समर्पण नहीं हुआ।

आकाश में सूर्य ठंडा हो जाय तो हम कहने को नहीं बचेंगे कि सूर्य ठंडा हो गया। क्योंकि हमारे शरीर का तापमान सूर्य के तापमान से जुड़ा है। सूर्य ठंडा हो जाय तो डॉक्टर, वैज्ञानिक लोग सूचना देने के लिए नहीं बचेंगे कि, सावधान ! सूर्य ठंडा हो गया है, जीने का इन्तजाम कर लो। नहीं....। डॉक्टर, मरीज, वैज्ञानिक सब एक साथ समाप्त हो जायेंगे।

ऐसे ही भक्त हो चाहे साधक हो चाहे शिष्य हो, ज्यों ही ईश्वर को, अनन्त को, गुरूतत्त्व को समर्पित हुआ कि वह गुरू बना। गुरू माने बड़ा। तिनका थोड़ी-सी हवा से इधर-उधर भटकने लगता है लेकिन आँधी तूफान चले फिर भी हिमालय और सुमेरू वहीं के वहीं अडिग रहते हैं। ऐसे ही कैसी भी परिस्थितियाँ आये लेकिन चित्त में शान्ति वही की वही बनी रहे। अडिगता..... अचलता........।

"हैं तो हम समर्पित लेकिन हृदय में ठेस बहुत लगती है। तरंग हम हैं ही नहीं, सागर हैं लेकिन क्या करें ? हममे कुछ है ही नहीं। न नाव चलती है न मछली तैरती है। क्या करें ?

अरे भैया ! तरंगपना मिटते ही सागर में जो कुछ हो रहा है वह मुझ में हो रहा है, ऐसा अनुभव हो जायगा। ऐसे ही जीवपना मिटते ही ब्रह्माण्ड में जो कुछ हो रहा है वह मुझ में ही हो रहा है ऐसा अनुभव प्रकट हो जायगा। सूर्य मुझमें प्रकाशित है, चन्दा मुझ ही में चमक रहा है, लोकपाल मुझ ही में जी रहे हैं, यक्ष गन्धर्व, किन्नर, मुझ ही में विहार कर रहे हैं, तैंतीस करोड़ देवता मुझ ही में विश्रान्ति ले रहे हैं। ब्रह्मवेत्ता को ऐसा बोध हो जाता है। मुझ में ही ब्रह्माजी समाहित हैं। वे मुझ में ही बैठकर संकल्प करते हैं तो सृष्टि बन जाती है। ऐसा ज्ञानियों का अनुभव होता है। वैकुण्ठ, गोलोक तथा सारूप्य,सायुज्य, सामीप्य आदि सब मुक्तियाँ अपने में

दिखेंगी। जैसे तरंग मिट जाय तो छोटे टापू, छोटी-मोटी किश्तियाँ, छोटे मोटे जहाज सब उसे अपने में दिखेंगे। क्योंकि वह तरंग नहीं, सागर हो गई ऐसे ही जीवत्व मिटा तो सारा ब्रह्माण्ड अपने ब्रह्मस्वरूप में दिखेगा।

गुरू नानक ने कहाः

मत करो वर्णन हर बेअन्त है
क्या जाने वह कैसो रे.....
ब्रह्मज्ञानी की गत कौन बखाने
नानक, ब्रह्मज्ञानी की गत ब्रह्मज्ञानी जाने।

वह भूमा-स्वरूप ही परम सुख-स्वरूप है। सुख=सु+ख। सु माने सुन्दर। ख माने आकाश, चिदाकाश। जीव ऐसा ही स्वाभाविक सुख स्वरूप है। तरंग स्वाभाविक ही सागर है। तरंग को सागर बनना नहीं है, केवल तरंगपना मिटाना है। तुमको ब्रह्म बनना नहीं है, केवल अपना जीवभाव मिटना है। जीवभाव मिटा तो ब्रह्म हैं ही।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।।

देहाध्यास गलते ही परमात्मा विज्ञानानन्दघन सच्चिदानन्द परमात्मा मेरा ही आत्मा है। वह मैं ही हूँ। ऐसा अनुभव हो जायगा। अनुभव हो जायेगा ये भी शब्द हैं। फिर अनुभव और अनुभव करने वाला यह दो नहीं बचेंगे।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

सागर को जानने वाली लहर सागर हो जायेगी। लहर सागर को भले न जाने, अपनी असलियत को जान लेगी तो भी सागर हो जायेगी। सागर की असलियत जानने के लिये उसे शायद कहीं जाना पड़े, दौड़ना पड़े लेकिन असलियत जानने में कितनी देर लगेगी ? ऐसे ही जीव अपनी असलियत जान ले तो बेड़ा पार है।

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"डॉक्टर रामलाल।"

"डॉक्टर कब बने ?"

"ग्यारह साल हुए।"

"ग्यारह साल पहले डॉक्टर नहीं थे, मात्र रामलाल थे। ठीक है ?"

"जी हाँ।"

"उसके पहले क्या थे ?"

"विद्यार्थी।"

"उसके पहले ?"

"लड़का।"

जब जन्में थे तब क्या थे ?"

"बालक।"

"जन्में तब तो रामलाल नहीं थे। जन्म के कुछ दिन बाद नाम रखा गया 'रामलाल'। ठीक है ?"

"जी हाँ।"

"तो जन्म से पहले क्या थे ? माता के गर्भ में दो महीने के थे तब क्या थे ? लड़का कि लड़की ?"

"जीव था।"

मूल में जीव था। बाद में और उपाधियाँ जुड़ीं। बालक का रूप लेकर जन्म लिया। कुछ दिन के बाद नाम रख दिया रामलाल। स्कूल गये, कालेज गये, मेडिकल का कोर्स किया, डिग्री मिले तो हो गये डाक्टर रामलाल। ये सब नाम आये लेकिन किस पर आये ? जीव पर।

जीव का असली स्वरूप क्या है ? भगवान कहते हैं-

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

जीव सनातन है। जीवात्मा सो परमात्मा है। तरंग सो सागर। तो बताओ, आप शुद्ध चेतन हुए कि नही हुए ?

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशि।।

आप चेतन हैं, विमल हैं। मल से रहित। कर्त्ता, भोक्ता, सुख, दुःख के मल से रहित। सुखी होने के लिए आपको कोई मजदूरी करने की जरूरत नही। सहज सुखराशि है चेतन हैं, विमल हैं। कर्म के मल तुममें प्रवेश नहीं करते। सृष्टि का प्रलय हो जाय, बारह सूर्य तपे, बारहों मेघ बरसे फिर भी तुम्हारे असली चैतन्यस्वरूप को कभी कोई कोई घाटा नहीं हो सकता। अपने इस नकली स्वरूप को, यानि शरीर को कितनी भी सुविधा दो फिर भी निश्चिंतता नहीं आयेगी। क्योंकि सुविधा देह को मिलेगी, देह को कभी रोग कभी आरोग्य, कभी सर्दी कभी गर्मी, कभी मान कभी अपमान, और मृत्यु तो सामने खड़ी ही है।

'देह को जो विदेही चैतन्य सत्ता देता है, वह हम हैं' - ऐसा ज्ञान जब तक नहीं होगा तब तक दुःखों से छुटकारा नहीं होगा। दुःखों की जड़ नहीं कटेगी। थोड़ी देर के लिए आदमी दुःख बदल देगा और 'हाश !' का अनुभव करेगा। यह भी विचार से, मान्यता से होगा। कही ममता बाँधकर सुख का आभास ले लेगा।

'मकान मेरा, दुकान मेरी, गाड़ी मेरी, हाश !'

ये तुच्छ चीजें पाकर ममता करते इतनी निश्चिंतता आती है तो अपना असली तत्त्व का जान लो तो कितनी निश्चिंतता आ जाय ? बेड़ा पार हो जाय।

ये तुच्छ चीजें पाना भी सब के बस की बात नहीं है लेकिन अपने चेतन स्वरूप को तो सब जान सकते हैं।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशि।।

स्वयं सुखराशि होते हुए भी जीव दुःखो के भीषण प्रवाह में डूबता उतरता जा रहा है। देह को सच्चा मानकर, संसार को सच्चा मानकर मर्कट की नाँई बन्धकर नाच कर रहा है।

बन्ध्यो कीर मर्कट की नाँई.....

यह प्रोब्लेम है, यह उपाधि है, यह करना है, यह पाना है, यह छोड़ना है, यह पकड़ना है। सारी जिन्दगी कर करके अन्त में देखो तो कुछ नहीं। अगले जन्म में सब कर कराके आये हो। लेकिन अभी देखो तो ? कुछ नहीं। ऐसे ही अभी जो कर रहे हैं, इकट्ठा हो रहा है वह सब मृत्यु के एक झटके में छूट जायेगा।

सुखस्वरूप होते हुए भी सुख के लिए मजदूरी कर रहे हैं, फिर भी सुख टिका नहीं। अब शास्त्र का आधार लेकर चलकर देखो, कितना लाभ होता है ! सब सुविधाएँ जुटा लूँ, चीज वस्तुएँ इकट्ठी कर लूँ फिर ध्यान भजन करूँ, आगे बढ़ूँ। यह मानना बेवकूफी है। पहले अपनी आत्मा में डट जाओ। चीज वस्तुएँ तो पाले हुए कुत्ते की तरह चरणों में आ जाएगी। सत्यसंकल्प हो जाओगे।

"पहले यह सब 'सेट' करूँ, फिर भजन करूँगा।"

नहीं होगा भजन। पहले परमात्मा में 'सेट' हो जाओ। बाकी का सब ठीक हो जायेगा। घोड़े के पीछे गाड़ी को जोतना होता है। हम क्या करते हैं ? घोड़े के आगे गाड़ी लगा देते हैं।

हमें वास्तव में पुरूषार्थ करना है आत्मा में डटने का, ईश्वर में बैठने का। यह तो रख देते हैं भाग्य पर। हमारा भाग्य होगा तो प्रभु मिलेंगे, भाग्य होगा तो ज्ञान मिलेगा...। और रोजी रोटी का, खान-पीने का, आने-जाने का, जीने-मरने का जो प्रारब्ध पर है उसक लिये हम दिन रात चिन्ता कर रहे हैं। चिन्ता करने से काम बन जाये तो कर लो चिन्ता। नहीं.....। काम करो, प्रयत्न करो, लेकिन चिन्ता मत करो। प्रयत्न में भी पहले आत्मपद में स्थित हो जाओ। उसको प्रथम मूल्य दो।

जितना मूल्य परमात्मा को देना चाहिए उससे भी ज्यादा मूल्य जगत को दे दिया है। जितना मूल्य जगत को देना चाहिए उससे भी कम मूल्य जगदीश्वर को देते हैं। यह गड़बड़ हो गई, बस। परमात्मा का मूल्य और संसार का मूल्य, दोनों हमने संसार को दे दिये। जो महापुरूष हो जाते हैं, जन्मजात सिद्ध पुरूष होते हैं वे संसार का और परमात्मा का, दोनों का मूल्य परमात्मा को अर्पण करते हैं। जो बीच के होते हैं वे संसार को जो मूल्य देना चाहिए वह संसार को देते हैं और परमात्मा को जो मूल्य देना चाहिए वह संसार को देते हैं और परमात्मा को जो मूल्य देना चाहिए वह परमात्मा को देते हैं। वे फिर साधन-भजन करते-करते सिद्ध बन जाते हैं।

दो वृत्तियाँ होती हैं- एक मुख्य वृत्ति और दूसरी गौण वृत्ति।

पनिहारी घड़े पर घड़ा और उस पर घड़ा लिये हुए सहेलियों के साथ पनघट से पानी भरके चली आ रही है। बात कर रही है कि 'कल हमारे घर मेहमान आये थे, खीर बनायी थी, हलवा बनाया था....' आदि आदि सब बातें कर रही है फिर भी उसके सिर पर जो तीन घड़े हैं वे ज्यों के त्यों स्थिर हैं। क्यों स्थिर हैं ? क्योंकि मुख्य वृत्ति वहाँ लगी है। सामान्य वृत्ति से रास्ता भी देख रही है और बातें भी कर रही है। मुख्य वृत्ति बातों में लगायेगी और सामान्य वृत्ति से घड़ा देखेगी तो घड़ा मिलेगा। जिस क्षण वृत्ति और सामान्य वृत्ति, दोनों को बातों में लगायेगी तो उसी क्षण घड़े नीचे.... धड़ाक्..... धुम्म।

ऐसे ही हम लोगों के जीवन का असली घड़ा धड़ाक.... धुम्म हो जाता है। क्योंकि दोनों वृत्तियाँ जगत में लगा दीं।

हमारी मुख्य वृत्ति ईश्वर में रहनी चाहिए और गौण वृत्ति से व्यवहार चलना चाहिए। लेकिन हम लोगों का क्या होता है किः शादी तो होनी चाहिए, नौकरी तो मिलनी ही चाहिए। ईश्वर मिले न मिले लेकिन लाड़ी तो मिलनी ही चाहिए। मुख्य वृत्ति इधर लगा दी। हमारी भक्ति बढ़ जाय, हमारा ज्ञान बढ़ जाय, ऐसी बात नहीं सोचेंगे लेकिन हमारी तनख्वाह बढ़ जाय।

"साहब आपकी मिल में रख लो। आपकी फैक्टरी मे रख लो.....।"

लेकिन जो साहबों का साहब अन्तर्यामी परमात्मा है उससे भी कह दोः "प्रभु ! हमको भी अपनी निगाहों में रखना। हमको अपनी तड़प में रखना। हमको अपने ज्ञान में रखना।"

अभागे विषयों को, तुच्छ व्यवहारों को इतना महत्त्व दे दिया कि ईश्वर मिले तो मिले, न मिले तो चल जायेगा लेकिन ये संसार की चीजें तो जरूर मिले।

हजारों लाखों लोगों के पास ये सब हैं लेकिन वे खुश हैं क्या ? कृतकृत्य हैं क्या ? नहीं। तो फिर ? जीवन में क्या पाया ?...... और जिनको ईश्वर मिलता है उनके जीवन में देखो ! वे स्वयं भी अपने आप में तृप्त, आनंदित और उनकी निगाहों में रहने वाले भी आनन्दित। जिनको सांसारिक चीजें प्राप्त हुई हैं उन करोड़ों को देखो और जिनको ईश्वर प्राप्ति हुई है उन विरले महापुरूषों को देखो। कितना फासला है दोनों के बीच ! रमण महर्षि को देखो, रामकृष्ण परमहंस को देखो, एकनाथ महाराज को देखो, वशिष्ठ मुनि को देखो ! इतना लाभदायी, इतना ऊँचा, इतना महान् जीवन दिखता है फिर भी ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा नहीं होती तो समझोः

तुलसी पूर्व के पाप ते हरिचर्चा न सुहाय।

यह पाप कर्म का फल है। पूर्व के कोई पाप हैं। प्रमाणपत्र पाने की तड़प है, प्रतिष्ठा पाने की तड़प है, घर की समस्याओं के लिए आँसू बहाता है लेकिन ईश्वर-प्राप्ति के लिए ? टालम टोल ! इधर से उधर.... उधर से इधर।

पारूमल सिपाही का थोड़ा सा दिमाग खुल गया। नौकरी से इस्तीफा देकर घर आया और आठ दिन तक कमरा बन्द करके बैठ गया। आठ ही दिन में महान् बनकर बाहर निकला।

जिसको आत्महत्या करनी है उसके लिए छोटी सी सूई भी काफी हो जाती है। अहं के गुब्बारे में एक सूई की नोक भोंक दो तो गुब्बारा खत्म हो जायेगा। अहं में कोई दम नहीं है। उसे विचार की सूई मार दो जरा सी।

पहले के लोग संतों का इतना सिर नहीं खपाते थे। वे बड़े जिज्ञासु होते थे। बुद्धिमान होते थे। जरा सा सुनते फिर चले जाते एकान्त मे, मनन करते थे। आज कल हम लोग इतने नीचे आ गये कि ब्रह्मज्ञान सुनकर फिर व्यवहार में, फिजूल की बातों में बहिर्मुख हो जाते है। हमारा ऐसा व्यवहार देखकर ज्ञानवान मौन ले लेते हैं, मुलाकात नही देते। जाओ.... सब की सब सँभालो। हम अपने पुराने स्वभाव में, तुच्छ स्वभाव में ही जियेंगे तो ज्ञानी अपना ब्रह्मभाव छोड़कर क्यों हमारे पीछे सिर खपायेंगे ? कितनी देर खपायेंगे ? कब तक खपायेंगे ? यमदूत अपने आप ठीक कर देगा। भैंसा बना देगा, डंडे खाते रहो। जिधर चारा दिखाये उधर भागता रहो। बकरा बना देगा, कुत्ता बना देगा। जिधर से पुचकार मिले उधर पूँछ हिलाते रहो। ऐसी कोई दुःखद योनियाँ हैं।

मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग करके दृढ़ता से चलेगा तभी काम बनेगा।

सीधी बात है कि जो मूल्य ईश्वर को देना चाहिए वह जगत को दे बैठे हैं, देह को दे बैठे हैं। इसलिए आदमी दुर्भाग्य से बचता नहीं।

वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।

अगर राग है तो वैराग्य में ही राग करो। त्याग में ही राग करो। किसी का धन, रूप, लावण्य, सौन्दर्य, सत्ता, सुख-सुविधा देखकर पापी मन में यही इच्छा होती आ जाती है कि मुझे ये सब कब मिलेंगे ! पवित्र हृदय में यही प्रार्थना होगी कि, "हे प्रभु ! मुझे वैराग्य का दान दो। मुझे त्याग का दान दो। मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान दो।"

मिले हुए अवसर का लाभ उठा लो। वृत्तियों को जगत से हटाकर जगदीश्वर में लगाने की, परमात्मा में लगाने की युक्ति जान लो। अपने आप में बैठना सीख लो।

सोचो कि तुम ताकत के तूफान हो। तुम वह चश्मा हो जहाँ से तमाम नदियों को जल मिलता है, तमाम वृत्तियों को चेतना मिलती है।

ईश्वर के मार्ग में जब कदम रख ही लिया तो फिर झिझकना क्यों ?

तूफान और आँधी हमको न रोक पाये।
वे और थे मुसाफिर जो पथ से लौट आये।।

कोई कहता है यह करो, कोई कहता है वह करो लेकिन भगवान, सदगुरू और हमारे पुण्य कहते हैं कि आत्मसाक्षात्कार करो। हितैषियों की बात सुनेंगे, मानने को तत्पर होंगे, फिर अज्ञानियों की बातों में आ जायेंगे। पहले भगवान की बात मान लो, शास्त्र की बात मान ल। शास्त्र की बात भगवान की बात है। जीव का प्रथम कर्त्तव्य है कि अपने आत्मा को जान ले।

अर्जुन के साथ भगवान श्रीकृष्ण थे तो भी अर्जुन विषाद में डूब गया। जब भगवान की बात मानकर तत्त्वज्ञान पा लिया, अपने आत्मा को जान लिया तब बेड़ा पार हुआ।

मन तू ज्योतिस्वरूप अपना मूल पिछान।

अपना मूल पहचान लिया तो बेड़ा पार।

रामकृष्ण परमहंस के पास आकर लोग कहते थेः "यह मेरा भाई है..... वकील होना चाहता है... यह मेरा दोस्त है...... डॉक्टर होना चाहता है।"

रामकृष्ण कहतेः डॉक्टर होना है, वकील होना है, इन्जीनियर होना है, जो भी होना है, बाद में हो जाना लेकिन पहले जिससे सब हुआ जाता है, जहाँ से वृत्ति स्फुरती है उस सर्वाधार आत्मा को जानो।

होने की कला से नहीं होने की कला ठीक है। उपाधियाँ आये उससे पहले उपाधियाँ हटाने की कला सीख लो, अपने आत्मा को जान लो, बाद में भले ही उपाधियाँ आ जाय डॉक्टर की, वकील की, इन्जीनियर की। आत्मज्ञान पाने के बाद मजे से डॉक्टर बनो। ......और वास्तव में बढ़िया डॉक्टर बनोगे। अरे, जो महापुरूष लोग परमात्मा में मस्त होते हैं, वे डॉक्टर न होते हुए भी ऐसा ऐसा बोल देते हैं कि डॉक्टरों के बिगड़े हुए केस भी सुधर जाते हैं। ऐसे ऐसे इलाज सहज में बता देते हैं कि अच्छे निष्णात डॉक्टर भी जिन मरीजों से हाथ धो लेते हैं वे मरीज भी ठीक हो जाते हैं। उनकी बुद्धि का आधार भी ईश्वर है, वकीलों की बुद्धि का आधार भी ईश्वर है लेकिन जो बुद्धि के आधार ईश्वर को जान लेते हैं वे निहाल हो जाते हैं। फिर उनकी बुद्धि ठीक निर्णय देती है। आदमी जितना अन्तर्मुख होता है, जगत का चिन्तन छोड़ता है उतना उसकी बुद्धि में अलौकिक प्रकाश होता है, अलौकिक ज्ञान प्रकट होता है।

बहिर्मुख ज्यादा मत बनो। जगत में बहुत चतुर मत बनो। बेमौत मारे जाओगे। गुरू जैसा चाहते हैं ऐसा अपने को बना दो। बेड़ा पार हो जायगा। क्या करने से गुरूजी राजी रहते हैं यह खोज लो और वैसा करो, वैसा बनो। अपना महत्त्व जानो। गुरू जो मूल्य दे रहे हैं उसको बढ़ाओ। गुरू रीझ जायें, ईश्वर रीझ जायें तो बस, सब काम पूरे हो गये। बाकी का सब ठीक है।

जगत में बहिर्मुख हो रहे हो ? जगत को रिझाने का ठेका लिया है क्या ? वही जगत तुमको दो पैसे का कर रहा है। जगत की कृपा न चाहो। जगत की सेवा कर लो लेकिन कृपा न चाहो। कृपा तो उस कृपा निधान परमात्मा की चाहो जिसमें वृत्ति लगाने मात्र से निहाल होने लगते हो।

दुर्जन की करूणा बुरी भलो साँई को त्रास।
सूरज जब गरमी करे तब बरसन की आस।।

'मैं निर्दोष, शान्त, ओजस्वरूप, प्रकृति से परे, असंग, अजन्मा, निर्द्वन्द्व, चैतन्य हूँ.....' ऐसा जो चिन्तन करता है वह अपने असली स्वभाव में जग जाता है। 'मैं फलाना हूँ, फलानि जाति का हूँ, फलाने का लड़का हूँ.....' ऐसा सोचा तो गया। अपने चिन्तन से ही आदमी जीव रह

जाता है। है तो ब्रह्म लेकिन चिन्तन ऐसा किया कि जीव बन गया। फिर जीव भी याद नहीं रहा, जाति बन गया। जाति भी नहीं रहा, जाति की एक शाखा बन गया। चिन्तन से ही बना, और किससे बना ? उसी चिन्तन को उलट दो। हो जाओ महान्।

तमाम दुनियाँ है खेल मेरा।
मैं खेल सबको खेला रहा हूँ।।

'वही मेरी चेतन सत्ता श्रीकृष्ण में बैठकर बंसी बजाती है, कुत्तों में रहकर भौंकती है, गधों में रहकर रेंकती है, पक्षियों में रहकर किल्लोल करती है। सारा संसार मुझ चैतन्यस्वरूप में अध्यस्त है। **ॐ आनन्दोऽहम्......**। - ऐसा चिन्तन करके आ जाओ अपने आप में। शहर में कर्फ्यू के समय घर से बाहर निकलते हैं तब बन्दूक और लाठी दिखती है तो भागकर घर में आते हैं कि नहीं ? ऐसे ही अपने आत्मा से बाहर आये तो राग, द्वेष, चिन्ता, भय, विषाद, दिखता है। अपने आत्मस्वरूप में आ जाओ, वेदान्त के पावन विचारों में मस्त हो जाओ। जंगल में जब आग लगती है तो सयाने हाथी नदी, तालाब में खड़े ही जाते हैं, मूर्ख जल मरते हैं। ऐसे ही चित्त में जब राग-द्वेष की अग्नि जले तब साधना और सत्संगरूपी सरिता में पहुँच जाना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ऐ राही ! बचके.......

एक महात्मा की कहीं कथा थी। किसी धर्मशाला में उनको ठहराया गया। धर्मशाला थी रेलवे स्टेशन के पास। सुबह भक्तलोग पूछने आयेः

"बाबाजी! कैसा रहा ? रात को नींद आयी ?"

"पूरी रात मैंने कथा सुनी। उपदेश मिला। मेरा तो कल्याण हो गया।"

"रात को कथा और उपदेश ?"

"रात को ग्यारह की लोकल आयी। फिर साढ़े बारह की आयी, ढाई का फास्ट आया, चार की पेसेन्जर आयी, साढ़े चार का मेल आया, छः की ऐक्सप्रेस आयी। पेसेन्जर आते जाते थे, ताँगे चलते थे। ताँगेवाले राहदारियों से बोलते जाते थेः

'ऐ भाई ! बचके.....!'

हमने सोचा कि कथा करने जाता हूँ लेकिन बचकर रहना है वाह वाही से।

'ऐ ! किनारे लग जा, ठोकर खायगा.....।'

बात ठीक थी। संसार की भीड़भाड़ से किनारे लग जा नहीं तो ठोकर खायेगा।

'ऐ मुसाफिर ! सावधान....।'

हम संसार के मुसाफिर हैं और सावधानी से जीना है। मैंने जैसे उपदेश ले लिया।"

जिसको जगना है वह ताँगेवाले के उपदेश से भी जग जायगा। जिसको बेवकूफ रहना है वह गुरू के उपदेश से भी बेवकूफ रहता है।

'ऐ भाई ! अपने रास्ते चल। बीच में मत आ.....।'

"साधना अपना रास्ता है। संसार के बीच जाना नहीं है। किसी के मामलों में टाँग अड़ाने का काम हमारा नहीं है।"

ताँगेवाला घोड़े को कोड़े फटकारता है। कोड़े की आवाज सुनाई पड़ती है। घोड़े की आँखों पर पट्टियाँ हैं। मुँह में लगाम। गाड़ी जोती हुई है। पेसेन्जर गाड़ी में बैठे हैं। काफी मालसामान भी लदा है। प्रभात के समय घोड़े को चाबुक लगते हैं। वह भी अगले जन्मों में किसी का बाप बना होगा, किसी का बेटा बना होगा, किसी का सेठ बना होगा। वे बेटे बाप अब कोई छुड़ाने नहीं आ रहे हैं। कर्म के फल अकेले को भोगने पड़ते हैं बेचारे को।

मुझे प्रभात में यही सत्संग मिला।

जब तक घोड़े में दम है तब तक 'चल बेटा राजू....' कहते जायेंगे, चाबुक फटकारते जायेंगे, लगाम खींचते जायेंगे। अपने परिवार वाले भी तो यही करते हैं। 'चल बेटा राज.....' कभी वाह वाह करेंगे, कभी ताना मारेंगे, कभी पुचकारेंगे और अपने स्वार्थ की गाड़ी खिंचवाते रहेंगे। जब तक तुममें कस है तब तक चूसते रहेंगे। बूढ़े हुए तो सामने भी नहीं देखेंगे।

गन्ने के रस वाले गन्ने को सँभालते हैं, सुबह शाम अगरबत्ती करते हैं। लेकिन साँचे में डालकर कुचल दिया, पूरा रस निकाल लिया तो बचे हुए कुचे इस प्रकार अपनी पीठ के पीछे फेंक देते हैं कि फिर आँख उठाकर देखते तक नहीं।

ऐसे ही जब तक तुम्हारे शरीर में, मन में, बुद्धि में, इन्द्रियों में दम है, रस है तब तक कुटुम्बी, पड़ोसी, नाते रिश्तेदार, समाज के लोग तुमसे स्नेह करेंगे, आदर मान देंगे। कैसे भी करके तुमसे काम लेंगे। संसार के साँचे में डालकर तुम्हारा रस निकालेंगे। जब देखेंगे कि तुम्हारी जवानी गई, बुढ़ापा आया, नस-नाड़ियों में निस्तेजता आ गयी, शक्ति क्षीण हो गई, आँखों से पूरा दिखता नहीं, कानों से पूरा सुनाई नहीं देता तब तुम्हें देखने के लिए कोई खड़ा नहीं रहेगा। अभी तो किसी के काम आते हो, जीवन में रस भरा है इसलिए परिवारवाले तुम्हें छोड़ने को राजी नहीं है। घर-बार, जमीन-जागीर छोड़कर ईश्वर के रास्ते चल पड़े तो परिवार वाले वापस बुलाने आयेंगे कि चलो, सब सँभालो। लेकिन जब आप सब सँभालते सँभालते बूढ़े हो जायेंगे तब वे लोग तुम्हारे हाथ से सब छीन लेंगे।

पत्नी बोलेगी कि चलिये। लेकिन तुमको कुछ व्याधि हो जाय, बीमारी हो जाय, खटिया पर पड़ जाओ तो फिर देखो, पत्नी भगवान से प्रार्थना करेगी कि इनका कुछ करो।

सारा संसार स्वार्थ का है। सब बताते है कि तुम्हारा यह कर्त्तव्य है, तुम्हारी यह जिम्मेदारी है। सब तुम्हारा कस निकालना चाहते है, नोंचना चाहते हैं।

गुरू बोलते हैं- तेरी कोई जिम्मेदारी नहीं है। तू साधना करके जान ले अपने आपको कि तू परमात्मा है। परमात्मा की माया सब कार्य करती रहती है। तेरी मुख्य जिम्मेदारी यही है कि तू अपने आत्मस्वरूप में जग जा। बाकी की सब जिम्मेदारियाँ तेरी बाकी नहीं रहेगी। सब ठीक हो जायगी।

उन भक्तों ने कुछ दुःखी होते हुए महात्माजी से पूछाः "अरे बापजी ! आपको फिर नींद नहीं आयी होगी ?"

"एक दिन लम्बे पैर पसार के सोना ही है। सब मिलकर जगाओगे तो भी नहीं जगूँगा। सारी रात जागता रहा और रात बहुत बढ़िया गई। .....और तुमने जो कथा रखी है न, वह तीन घण्टे नहीं करूँगा। दो घण्टे सुबह करूँगा और दो घण्टे शाम को। बाकी के समय में वाणी का संयम करूँगा।"

"बाप जी। रात को नींद नहीं आयी इसलिए कथा का समय कम करते हैं ?"

"नहीं....। रात्रि को जगा हूँ और अब दिन में भी जगूँगा। जो भी गुजरेगा, जो भी परिस्थितियाँ आयेंगी उसका साक्षी होकर रहूँगा।"

"बाबाजी ! ताँगे वाला ऐसा कहते थे ?"

"हाँ.....।"

"ऐ भाई ! बच के.... ऐ मुसाफिर ! अपनी साईड से चल..... किनारे लग जा।"

साधक को अपना किनारा खोज लेना है।

"ऐ ! मरेगा बीच में.... हट जा....। ठोकर खायेगा......।"

"कौन क्या करता है, कौन क्या कहता है, क्या लेता-देता है, कहाँ आता जाता है इस प्रपंच में फँसेगा तो ठोकर खायेगा ही।"

अपनी महिमा को जानो। अपने गौरव से जो बाहर है उन चेष्टाओ से बचो। गुरू और ईश्वर जो उम्मीद रखते है ऐसा होकर दिखाओ।

"ऐ भाई ! बच के.... नहीं सुनेगा तो ठोकर खायेगा।"

बिल्कुल सच्ची बात है। गुरू और शास्त्र के वचन आदर से नहीं सुनेगा तो ठोकर खायेगा। फिर रोना भी नहीं आयेगा। जब तक गुरू की हयाति है, शास्त्र और गुरू के वचन सुनने समझने की योग्यता है तब तक समझ लिया तो समझ लिया नहीं तो तोबाह है......। गुरू का जब वियोग हो जाता है तब शिष्य के हृदय पर जो गुजरती है, हृदय के टुकड़े-टुकड़े होते हैं यह तो वही जानता है।

गुरू की हयाति कितनी कीमती होती है ! गुरू जब चले जाते हैं तब शिष्य निराधार हो जाता है। उसको संसार से, संसार की निम्न गति से पूरी लड़ाई अकेले करनी पड़ती है। गुरू शिष्य को अपने सान्निध्य में रखकर निगरानी रखते हैं, उत्थान कराते हैं, गिरावट से बचाते हैं, खतरों से चेताते हैं। फिर कौन चेतायेगा ? नीचे गिराने वाले तो चारों तरफ लगे हैं। बेटा बोलेगाः

"तुम मेरे बाप हो। पत्नी बोलेगीः "मेरे पति हो। ऐसा बोलेंगे कि तुम ब्रह्म हो असंग हो ? ऐसा कौन बोलेगा ?

व्यापारी बाप सिखाता है बेटे को कि ग्राहक से निपट ले। सच्चा बाप तो वह है कि जो काल से निपटने की तरकीब सिखा दे।

जिसके जीवन में साधन-भजन है, बुद्धि शुद्ध है वह ताँगेवाले की बात को भी अपनी साधना की बात बना लेगा। जिसके जीवन में साधन-भजन नहीं है, नियम नहीं है वह गुरू के उपदेश की भी अवहेलना कर देगा। साधन-भजन से संपन्न होता है वह शिष्य, वह साधक गुरू के उपदेश की कदर कर सकता है। ईश्वर का भजन सर्व योग्यता को प्रकट करता। जो-जो संत, महात्मा, सिद्ध पुरूष महान् हुए हैं वे परमात्मा के भजन से ही महान् हुए है, लोगों की दी हुई उपाधियों से या पदवियों से महान् नहीं हुए। जोती हुई उर्वर भूमि में बीज बोते हैं वह अच्छा फलता है ऐसे साधन भजन से योग्यता विकसित किये हुए अन्तःकरण वाले साधक में गुरू का उपदेश चमक उठता है।

किसी की दी हुई उपाधि से जो बड़ा बन जाता है वह खतरे वाला आदमी है। मिली हुई उपाधि है, अपना अनुभव नहीं है। बिना अनुभव के, दूसरों की दी हुई उपाधियों में राजी होकर जीना यह तो ऑक्सीजन की बोतल पर जीना हुआ। अपनी महानता को जाना नहीं और लोग महान कहते हैं, वाह वाह करते हैं तो सावधान ! मृत्यु के समय अपनी अनुभूति काम आयेगी, किसी के दिये हुए टाइटल काम नहीं आयेंगे। तो अपना अनुभव कर लो बस।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

हम सनातन हैं, चेतन हैं, विमल हैं, सहज सुखराशि हैं। यह अनुभव कर लो। जरा सी बात है। श्रीकृष्ण की बात नहीं मानोगे तो और किस की मानोगे ? हमारी भी वही बात है जो श्रीकृष्ण कह रहे हैं। हमारी कोई दूसरी बात हो तो मत मानो। हम तुमसे कहें कि तुम जीव हो, तुम पटेल हो तो हमारा कहना मत मानो। हम कहते हैं कि तुम चेतन हो, यह तो मान लो। हम शास्त्र की बात कहते हैं तो मानो। हम अगर अपने घर की, फैक्टरी की या दुकान की बात कहें की तुम शक्कर के ग्राहक हो, तुम शक्कर लो, यह बात मानना।

तुम तो ब्रह्म परमात्मा की औलाद हो। बाप तैसे बेटे..... वड़ तैसे टेटे। तुम अमृतपुत्र हो। अपने अमृत स्वभाव को जान लो। कब तक पिता के गन्दे अंगों से पसार होंगे ? कब तक माता के गर्भों में ठोकरें खाओगे ? जन्म-मरण के घटीयंत्र में कब तक घूमोगे ? ॐ.....ॐ......ॐ....

हे साधक ! उठ। कमर कस। अपनी महिमा में जाग। हजार बार फिसलने पर भी घबरा मत। उदास मत हो। निराश मत हो। एक कदम आगे रख। परिस्थितियों के सम्बन्ध से अपने को अलिप्त समझ। बार-बार इन पावन विचारों का मनन कर।

साहस..... बल..... प्रेम..... प्रसन्नता....।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति

रूपये के लिए परिश्रम हमको बाहर ले जाता हैः ऑफिस में, फैक्टरी में, दुकान में। मतलब के लिए अधिकारी के साथ हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है, चाहे वह अधिकारी सब प्रकार से हेय ही क्यों न हो। उपासन हमें देवता या ईश्वर के 'मैं' के साथ एक करती है और अहंग्रहोपासना, धारणा, ध्यान, समाधि हमको अपने आप में बैठाती हैं। ये सब कर्म उपासना के फल हैं।

ब्रह्मविद्या इससे निराली चीज है। उसमें न तो अपने में बैठना है, न बाहर इहलोक या परलोक में विषय या इष्ट के साथ बैठना है। इसमें न विषयाकार सुखवृत्ति है, न इष्टाकार सुखवृत्ति है और समाधि की शान्तिवृत्ति है। सकाम उपासना का फल लोक-परलोक में सुख होता है, निष्काम उपासना का फल इष्टदेव से तादात्म्य होता है और धारणा, ध्यान, समाधि आदि निवर्तक कर्म हैं उनमें वृत्ति निरूद्ध होकर अपने आपमें बैठ जाती है। ये तीनों ब्रह्मविद्या के फल नहीं हैं।

द्वैत के अत्यन्ताभाव से उपलक्षित एवं प्रत्यक् चैतन्य से अभिन्न जो तत्त्व है उसको ब्रह्म कहते है। उस ब्रह्म को जानना ब्रह्मविद्या है। द्वैत प्रपंच अर्थात् पाँच प्रकार के भेदः जीव जीव का भेद, जीव जगत का भेद, जीव ईश्वर का भेद, ईश्वर जगत का भेद और जगत जगत का भेद। ये भेद जिसमें नहीं है, जो इन भेदों का प्रकाशक है और जिसमें ये भेद अधिष्ठित दिखते हैं - ऐसा जो जगत्कारण ईश्वर और देह देहस्थ जीव के भेद से रहित चेतन तत्त्व है ब्रह्म, उसको ऐसा ही जानना ब्रह्मविद्या है।

"मैं पाप-पुण्य का कर्त्ता नहीं, सुख दुःख का भोक्ता नहीं, लोक परलोक में आने जाने वाला संसारी नहीं, मैं परिच्छिन्न नहीं। मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ।" - इस बोध से अविद्या की निवृत्ति और उससे बन्धन, परतन्त्रता आदि सबकी निवृत्ति तथा स्वरूपभूत आनन्द की प्राप्ति, यह ब्रह्मविद्या का फल है।

धर्म कराता है, उपासना भुगवाती है और सांख्ययोग छुड़वाते हैं। परन्तु यह जो ब्रह्मविद्या है वह तो एक झटके में ही अनादि काल से प्रवर्तित अविद्याजन्य कर्तृत्व, भोक्तृतत्व, संसारित्व, परिच्छिन्नत्व की भ्रान्ति को काट फेंकती है और सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ती होकर परम स्वातन्त्र्य रूप मोक्ष एवं परमानन्द का भोग होता है।

अज्ञान के कारण हमने अपने को मन के साथ उलझा लिया है। मन के अनुसार हो तो सुख, विपरीत हो तो दुःख। मानो हम हो गये पत्नी और मन हो गया हमारा पति। पति भी ऐसा

कि घर में रहे तो नींद में रहे और जागे तो बाहर चले जाय। जो पत्नी की तरफ देखे ही नहीं ऐसे पति से कौन पत्नी सुखी होगी ?

यज्जाग्रतो दूरमुदेति।

(यजु. माध्य. 34.1)

ऐसे मन की मुट्ठी में अपने आपको दे देना बेवकूफी के सिवा कुछ नहीं है। मोक्ष का अर्थ है इस नासमझी से छूट जाना। असल में छूटता कुछ नहीं है, बेवकूफी ही छूटती है। अब अगर इसमें भी आपको दुःख लगता है तो फिर 'खुदा हाफिज' (ईश्वर आपकी रक्षा करे) ऐसा ही बोलना पड़े।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कामना की निवृत्ति

कामना की पूर्ति होती है तो वह बार बार उठती है। कामना यदि अतृप्त रहती है तो तृप्त होने के लिए परिश्रम करवाती है। कामना की पूर्ति-आपूर्ति नहीं, कामना की निवृत्ति होनी चाहिए।

अपने आपका सहज स्वाभाविक रस जब आदमी नहीं ले पाता तब उसे कामनाएँ सताती हैं, विकार-वासनाएँ सताती हैं।

निरसता कामना की जननी है। किसी भी पदार्थ की कामना जगती है तो परिश्रम व परेशानी बढ़ती है। उससे कर्मबन्धन बनते हैं। जीवन में भीतर से निरसता न रहे। जब आत्मा का असली रस मिल जाता है तब नकली रस छूटता है। असली रस की उपलब्धि सत्संग से ही संभव है। दूसरा कोई उपाय नहीं। सत्संग माने सत् स्वरूप परमात्मा का संग। यह सत्संग चार प्रकार से हो सकता है।

सत् चित् आनन्दस्वरूप आत्मा-परमात्मा की अपरोक्षानुभूति होना माने आत्म-साक्षात्कार होना, बार-बार उसी ब्रह्मानन्द में डूबना, मस्त होना यह एक नम्बर का सत्संग है।

जिन महापुरूषों की ब्रह्मानुभूति हो गई है उनके प्रत्यक्ष सान्निध्य में जाकर, उनकी अमृतवाणी सुनकर सत्यस्वरूप परमात्मा के आनन्द में डूबना या दूसरे नंबर का सत्संग है। उन ब्रह्मनिष्ठ महापुरूषों की अमृतवाणी से बने हुए सत्साहित्य का सेवन, वाचन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके सत्यस्वरूप परमात्मा की रसानुभूति की राह पर चलना यह तीसरे नम्बर का सत्संग है। ऐसे ग्रन्थ किसी के द्वारा सुनना और समझने की कोशिश करना यह चौथे नम्बर का सत्संग है। फिर आता है अनुभव संपन्न महापुरूषों के शास्त्रों को लेकर उसमें देश, काल व व्यक्ति की रूचि के अनुसार वीर रस, हास्य रस, शृंगार रस के किस्से कहानियाँ जोड़कर आलंकारिक भाषा में उन पवित्र ग्रन्थों का कथन, उसे कथा अमृत कहा जाता है।

जो कीर्तन करता है वह कथा में पहुँच जाता है और जो कथा में जाता है वह देर सबेर चौथे, तीसरे, दूसरे और प्रथम नम्बर के सत्संग में पहुँच जाता है।

सत्संग में ही जीवन की सार्थकता है। सत्संग के बिना पूरी उम्रभर परिश्रम कर करके, मेहनत मजदूरी, धन्धे-रोजगार कर करके मर जायेंगे। आखिर क्या ? बेटे-बेटियों की, कुटुम्ब-परिवार की सब जिम्मेदारियाँ अदा कर लें फिर भी जीवन भीतर से खोखला जान पड़ता है। हाय हाय में पूरी उम्र बीत जाती है। भीतर का रस जब तक प्रकट नहीं होता तब तक आदमी को संसार में भटकना पड़ता है।

अपनी अक्ल इन्सान को जब तक आती नहीं।
दिल की परेशानी पूरी तब तक जाती नहीं।

अपनी अक्ल यह है कि अपना भीतर का रस मिल जाय। जीवन में भीतर से निरसता आती है तभी आदमी बाहर भागता है। आप भीतर का रस पा लें तो संसार के रस आपके चरणों में गिरेंगे। भीतर का रस नहीं है तो आपको संसार के रस के पीछे भागना पड़ेगा। .....आत्मा-परमात्मा का रस एक बार ठीक से मिल गया तो फिर जाता नहीं।

देहाभिमान का अन्त होते ही चित्त की विश्रान्ति हो जाती है। देह को 'मैं' माना, कुटुम्बियों को 'मेरा' माना। .....फिर, यह करना है.... वह करना है.... ऐसी कामनाएँ जगीं तो आ गये आत्मस्वरूप से बाहर। भीतर की शान्ति चली गयी। 'मेरे बच्चे.... मेरा परिवार... मेरी पत्नी.... मेरा धन्धा रोजगार हाय ! मेरा क्या होगा ?" तो संसार का विषचक्र चालू।

इसीलिए उच्च कोटि के साधक घरबार छोड़कर ईश्वरप्राप्ति के लिए कदम रखते थे उनसे ऋषि लोग प्रतिज्ञा करवाते थे कि जब तक परमात्म-प्राप्ति न हो जाय, ब्रह्मज्ञान न हो जाय तब तक अपने घर के इर्दगिर्द के सौ कोस तक के इलाके का पानी नहीं पियेंगे। ऐसा प्रतिज्ञाबद्ध साधक अपने परिवार में कैसे जाकर ठहर सकता है ? इस प्रतिज्ञा के बल से वह पारिवारिक मोह-ममता की फाँसी से मुक्त हो जाता था।

अपने कुटुम्बियों में, नाते-रिश्तेदारों में रहने से देहाध्यास का सर्जन और वृद्धि होती रहती है। बेटा बाप की नजर से देखता है, पत्नी पति की नजर से देखती है, माँ बेटे की नजर से देखती है। जैसी नजर से लोग देखते हैं वैसा सम्बन्ध बन जाता है। क्योंकि हमारा आत्मस्वरूप ऐसा शुद्ध है, ऐसा पवित्र है, ऐसा शक्तिमान है, ऐसा शीघ्रफलदायी है कि उसमें जैसी कल्पना करो वैसा सत्य भासता है। सामने जैसा भाव रख दो वैसा ही हो जाता है।

शादी में एक कन्या के साथ अग्नि के सात फेरे फिर लिये, उस कन्या में पत्नी का भाव रखा तो वह पत्नी हो गई। पत्नी को देखते ही चित्त उसी प्रकार के विचारों में जायेगा।

ब्रह्मज्ञानी संत को देहाध्यास नहीं रहा। 'मैं देह हूँ' ऐसी भ्रांति उनमें निवृत्त हो गई। अतः वे संसार के सम्बन्धों में लिपायमान नहीं होते। तुम अपने को देह मानोगे तो पुत्र परिवार, पत्नी आदि को अवश्य अपना मानोगे। अपना देहाध्यास छोड़ोगे तो पूरा विश्व मेरा ही आत्मस्वरूप है

ऐसा अनुभव होने लगेगा। ब्रह्मज्ञान के बिना जीने का मजा नहीं है। और ...... ब्रह्मज्ञान कठिन भी नहीं है।

जितना महत्त्व नश्वर चीजों को, नश्वर धन्धे-रोजगार को दिया है उससे आधा महत्त्व भी अगर परमात्मा को देवे तो हर इन्सान भगवान हो जाये। जितना समय तुच्छ चीजों के पीछे, दुनियाई सम्बन्धों के पीछे, बेटा-बेटी-दामाद-सास-श्वसुर-यार-दोस्त के पीछे, मुलाकात-मेहफिल के पीछे बरबाद किया उससे आधा समय अगर संतों के पीछे, ईश्वर के पीछे लगा दे, सत्कार्य और सेवा में लगा दे, तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाय और आत्मा का ज्ञान हो जाय। जितना महत्त्व भगवान को देना चाहिए उतना महत्त्व हम संसार और उसके सम्बन्धों को दे बैठे हैं। इसीलिए हम परेशान होते हैं। संसार को ईश्वर से भी ज्यादा सत्य बना बैठे हैं। ईश्वर प्राप्ति का मूल्य हम समझ नहीं पाते। इसीलिए भीतर का असली रस हम पा नहीं सकते। चारों प्रकार के सत्संग के द्वारा सत् स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाय, भीतर का आत्मरस एक बार छिड़ जाय तो हमारा जीवन रसीला बन जाय, कामनाओं की निवृत्ति हो जाने से हमारी दर-दर की भटकान बन्द हो जाय। जीवन की तमाम परेशानियों से हम पार हो जायें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निराकार आधार हमारे...............

जो महापुरूष देह का मान नहीं चाहते उनको अपने आप मान मिलता है। ऐसे महापुरूषों को हम शंकर नहीं कहेंगे अपितु श्रीमद् आद्य शंकराचार्य कहेंगे, वेदव्यास नहीं कहेंगे अपितु भगवान वेदव्यास कहेंगे। उनके लिये न्यून शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे बल्कि आदर देंगे, हालाँकि उनको हजारों वर्ष हो गये।

'हिटलर मर गया, रावण मर गया, कंस मर गया.....' ऐसा हम कहते हैं कि लेकिन भगवान श्रीकृष्ण और श्रीरामचन्द्रजी के लिए ऐसा नहीं कहते। इन महापुरूषों का भी साकार रूप तो विलीन हो गया फिर भी उनके लिए आदरपूर्ण वाणी उच्चारेंगे। वे अपने स्वरूप को यथार्थ जानते थे, अपने देह से नितान्त पृथक थे, अपने नामरूप का मान वे नहीं चाहते थे। इसीलिए उनके नाम व रूप का मान हो रहा है। आप अपने नाम और शरीर के मान की इच्छा छोड़ दें तो आपका भी मान होने लगेगा। 'मेरा नाम हो जाय, मेरी इज्जत हो जाय इसलिए मैं इज्जत छोड़ रहा हूँ....।' तो इज्जत के लिए गहरी इच्छा तो पड़ी है। मान की वासना मौजूद है। ईश्वर में अहं विलीन नहीं हुआ।

स्वामी रामतीर्थ पहले कालेज में प्रोफेसर थे। फिर वैराग्य आया कि, "प्रभु अपने हृदय में हो और उसका साक्षात्कार नहीं हो तो क्या जीना ?" वैराग्य उमड़ पड़ा तो नौकरी से इस्तीफा

देकर चल पड़े। उनके दोस्त उनको गुरू जैसे मानते थे, बड़ा आदर करते थे, वे भी साथ चले। रामतीर्थ की पत्नी और दो छोटे बच्चे भी साथ चल पड़े। ऐसे पति और मधुर पिता को कौन छोड़े ?

रामतीर्थ ने कहाः "सब साथ चलो, कोई बात नहीं लेकिन हम तो संन्यास लेंगे। ईश्वर के लिए जियेंगे। तुमको भी ईश्वर के भरोसे जीना हो तो ठीक है, चलो साथ में। लेकिन साथ में कुछ लेकर चले, संसार को पकड़कर चले तो बात नहीं बनेगी।"

सबने कहाः "नहीं लेंगे संसार को साथ में। सब छोड़कर ऐसे ही चलेंगे।"

सब गये। एक जगह ध्यान में बैठे। भोजन का समय हुआ। भूख लगी। बच्चे बैठे हैं, पत्नी बैठे है, दूसरे लोग भी बैठे हैं। राम बादशाह एक ऊँचे टीले पर जाकर आत्मध्यान में डूबे हैं। अब क्या करें ?

प्रकृति ने किसी आदमी की प्रेरणा की। उसने देखा कि ये सब कब के इधर ही बैठे हैं। भूखे-प्यासे होंगे। वह स्वामी राम के पास गया और नम्रता से बोलाः

"आपको भोजन कराना है।"

रामतीर्थ ने आँखें खोली। भक्त की बात सुनी। उससे पूछाः

"कौन कराता है भोजन ?"

"स्वामी जी, मैं कराता हूँ।"

"नहीं करना है। ईश्वर भोजन करायेगा तो करेंगे। तेरा भोजन हम नहीं करते।"

वह आदमी चला गया। समय बीता। कोई भोजन कराने नहीं आया। तब रामतीर्थ ने कहाः "देखो, अपने पास कुछ न कुछ पड़ा होगा इसलिए ईश्वर नहीं आया। सब लोग जाँचों, तुम्हारे पास क्या है ?"

तलाश की तो पत्नी ने एक अंगूठी छुपाकर रखी थी वह मिली। सोचा था कि कहीं भूखे मरेंगे तो इसका उपयोग करेंगे। रामतीर्थ बोलेः "इसीलिए ईश्वर नहीं आये भोजन कराने। अभी हमने ईश्वर का पूरा सहारा नहीं लिया, अंगूठी के सहारे बैठे हैं। ईश्वर पर पूरा भरोसा नहीं है। आपद काल में अंगूठी काम आयेगी, ईश्वर नहीं आयेंगे ऐसी पक्की धारणा है तो ईश्वर कैसे आयेंगे ?"

जब श्रद्धा विश्वास सौ प्रतिशत होता है तब अपना ही चैतन्य, अनन्त ब्रह्माण्डों में फैला हुआ अनन्त लीला करके श्रद्धा के अनुसार घटना घटित कर देता है, इष्ट आ जाते हैं। लेकिन तत्त्वज्ञान इससे भी आगे की बात है। उसमें इच्छित वस्तु, इच्छित अवस्था प्राप्त होने पर या उसके विपरीत होने पर जिस तन और मन को क्षोभ, खेद होता है उस क्षोभ और खेद से तत्त्ववेत्ता अपने को अप्रभावित रखता है।

यह ब्रह्मविद्या अज्ञान निवृत्त करके मन की बेवकूफी से परिस्थितियों के साथ जुड़ने की आदत तुड़ाकर अपने नित्यमुक्त स्वरूप में जगा देती है।

ऐ साधक ! दृढ़ निश्चयी हो। अपने मुक्त स्वरूप उस मालिक पर, उस प्रभु पर न्योछावर कर दे भूत और भविष्य की इच्छाओं को, चिन्ताओं को, परिस्थितियों को। उनको बीतने दे और अपने नित्य स्वभाव में हलचल मत होने दे।

वास्तविक एकान्त चिन्मय तत्त्व ही है, जहाँ हलचल पैदा करने वाला कोई प्राकृत पदार्थ, व्यक्ति आदि पैदा हुआ ही नहीं। उस चिन्मय तत्त्व को 'मैं' जान। वह चिन्मय तत्त्व तेरा स्वरूप है। वही पूर्ण प्रेम स्वरूप, पूर्ण स्वतंत्र और पूर्ण आनन्द का खजाना है। तेरे इसी आत्मखजाने से अनादि काल से सृष्टि में अदभुत आविष्कार, अदभुत आकर्षण और अदभुत आनन्द आ रहा है। फिर भी इस चिन्मय तत्त्व में कभी कुछ कमी नहीं हुई। वह तेरा वास्तविक स्वरूप है। वस्तुओं-व्यक्तियों-परिस्थितियों से तू कभी छोटा-बड़ा नहीं होता। सहस्र नेत्रधारी इन्द्रदेव और लोकपाल, राजेमहाराजे, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर सब तेरे इस चिन्मय तत्त्व से संचालित हो रहे हैं। तू एक शरीर में नहीं, तू अनेकों में एकरूप हो विराजमान है। मन की भिन्नता से, संस्कारों की भिन्नता से सब भिन्न-भिन्न दिखता है। वास्तव मे तुझ चैतन्य का ही विलास है। कोयल की टहुकार, पक्षियों की किल्लोल, फूलों की महक, बादलों की गूँज, बिजली की चमक और दिल की धड़कन.... सब तेरी चेतना का चमत्कार है।

हे चेतन स्वरूप ! कब तक शरीर और मन के साथ जुड़कर बेवकूफी का खेल खेलेगा ? जाग अपनी असलियत में। उसी समय सब दुःख, पाप, कर्मों के जाल कट जायेंगे। ब्रह्मविद्या के सिवाय और कोई उपाय नहीं। ब्रह्मज्ञान के सिवाय दुःख से सदा के लिए बचने का और कोई उपाय नहीं।

हमेशा ब्रह्मचिन्तन कर। अपने ब्रह्मभाव को याद कर। छोटी मोटी परिस्थितियों को, छोटे-मोटे दृश्यों को जहाँ से रंग मिलते हैं उस आधार में जाग जा। 'तमाम दुनियाँ है खेल मेरा....' ऐसा नित्य अनुभव कर। रोना, चीखना, घबड़ाना, परेशान होना, परिस्थितियों की, अवस्थाओं की इच्छा करना.... मन की इस नागपाश से सावधान हो जा।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सदब्रह्म तेरा वंश है।।
चैतन्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है।
जन्मे नहीं मरता नहीं, कूटस्थ है अविनाशी है।।
निर्दोष है निस्संग है, बेरूप है बिनु रंग है।
तीनों शरीरों से रहित, साक्षी सदा बिनु अंग है।।
सुख शान्ति का भण्डार है, आत्मा परम आनन्द है।
क्यों भूलता है आपको ? तुझमें न कोई द्वन्द्व है।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ5

पूज्यपाद संत श्री आसाराम जी का पावन संदेश

ऐ मानव !

तू कितना महान्.....!!

मानव ! तू अपनी महानता देख।
रूपयों से, कपड़ों से, सत्ता से, सौन्दर्य से,
साथियों से तू अपने को बड़ा मत मान।
अपने असली बड़प्पन को निहार।
यह उधारा बड़प्पन कब तक टिकेगा ?
योग के द्वारा संसार के सुखों का भी ठीक उपयोग कर
और आत्मसुख का भी अमृत पी। भोग एवं मोक्ष दोनों ही
लड्डूओं का तू अधिकारी है। चिन्ताओं और अज्ञान की
जंजीरों में नाहक अपने को क्यों उलझा रहा है ?
उठ... खड़ा हो जा अपने पैरों पर। अपना
आन्तरिक खजाना खोलने के लिए प्रतिदिन
आध-पौन घण्टा सुबह-शाम अभ्यास करके
देख... तू कितना महान् है !

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम